महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६१ अंक : २४

दयानन्दाब्द: १९५

विक्रम संवत्: पौष कृष्ण २०७६

कलि संवत्: ५१२०

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२११२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

ijkidkjh

दिसम्बर द्वितीय २०१९

अनुक्रम

०१. भारत और भारतीयता के लिए ...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-४३	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. महर्षि दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी...	प्रियव्रत वेदवाचस्पति	१४
०५. आर्य सिद्धान्तों के निष्ठावान्...	कन्हैयालाल आर्य	१७
०६. आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में...	वेद प्रकाश गुप्ता	२१
०७. शिक्षा में हिन्दी के प्रस्तोता....	प्रकाशवीर शास्त्री	२४
०८. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		२६
०९. संस्था की ओर से...		२७
१०. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३०
११. अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द	जगदेव विद्यालङ्कार	३१
१२. राजनीति के योद्धा स्वामी श्रद्धानन्द	वेदारीलाल आर्य	३३

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

भारत और भारतीयता के लिए स्वामी श्रद्धानन्द के राष्ट्रवादी प्रयास

सर्वत्यागी, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के समुद्धारक, सबको समान शिक्षा के अधिकार के समर्थक, अछूतोद्धारक, राष्ट्रभक्त संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती का संन्यास धारण करने से पूर्व 'मुंशीराम' नाम था। वे अपने महान् और उदारतापूर्ण कार्यों से '**महात्मा मुंशीराम**' के नाम से प्रसिद्ध हुए। मुंशीराम के साथ **महात्मा** शब्द का सम्बन्ध इतना गहरा जुड़ चुका था कि प्रारम्भ में जब श्री गाँधी के लिए कोई **महात्मा** पद का सम्बोधन करता था तो गाँधीजी चौंक पड़ते थे। उन्होंने लिखा है कि ''**जब कोई मुझे 'महात्मा जी' कहकर पुकारता है तो मुझे सन्देह होता है कि कहीं यह 'महात्मा मुंशीराम' को तो नहीं पुकार रहा है।**'' मुंशीरामजी का जन्म पंजाब प्रान्त के 'तलवन' गाँव में सन् १८५६ ईस्वी में हुआ। उनके पिता लाला नानकचन्द उत्तर प्रदेश में पुलिस अधिकारी थे। एक बार जब लाला नानकचन्द बरेली में कोतवाल के पद पर कार्यरत थे तो वहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती पधारे। स्वामीजी के उपदेश सुनकर स्वयं प्रभावित हुए लाला नानकचन्द ने अपने पुत्र मुंशीराम को भी स्वामीजी के उपदेश सुनने की प्रेरणा दी। स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेश सुनकर सांसारिक व्यसनों में लिप्त रहने वाले मुंशीराम की जीवनधारा ही बदल गई और वे ईश्वरविश्वासी, धार्मिक, व्यसनों से विरक्त एक राष्ट्रभक्त व्यक्ति बन गये। वे वकालत का व्यवसाय करते थे, किन्तु व्यक्तिगत जीवन में वे वेद आदि आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय करते थे। उनको अनुभव हुआ कि अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली से पढ़कर भारत का युवावर्ग भारतीय संस्कृति-सभ्यता से विमुख, राष्ट्रप्रेम से विहीन और पाश्चात्य सभ्यता की ओर आकर्षित होता जा रहा है तथा दुर्व्यसनों में फँसता जा रहा है। उन्होंने विचार किया कि युवावर्ग को इन सब कमियों से परम्परागत भारतीय आर्ष गुरुकुल शिक्षाप्रणाली ही बचा सकती है। तब उन्होंने गुरुकुल की स्थापना करने का संकल्प लिया। उससे शिक्षा के क्षेत्र में नयी क्रान्ति का आरम्भ हुआ। उनके द्वारा विचारित शिक्षा-प्रणाली वैदिक और अर्वाचीन शिक्षा का समन्वित रूप थी। महर्षि दयानन्द के पश्चात् शिक्षा-विषयक यह दृष्टिकोण स्वामी श्रद्धानन्द की देन था।

पारिवारिक दायित्वों से मुक्त होने के बाद महात्मा मुंशीराम जी ने अपना सर्वस्व अर्थात् जालन्धर स्थित विशाल भवन, प्रेस, भूमि आदि सब कुछ आर्यसमाज को दान कर दिया और पर्याप्त धन-संग्रह करके हरिद्वार के पास काँगड़ी नामक गाँव में, गंगा तट पर सन् १९०२ में पहला गुरुकुल खोला, जिसका नाम **गुरुकुल काँगड़ी** प्रसिद्ध हुआ। मुंशीराम जी ने अपने दो बेटे भी उसी में प्रविष्ट करा के आर्यसमाज को समर्पित कर दिये। यह जनता के सामने मोहत्याग एवं सर्वमेध यज्ञ का अनुपम उदाहरण था। उनके इस अनुकरणीय उदाहरण को देखकर अन्य अनेक छात्र भी गुरुकुल में प्रविष्ट हो गये और वहाँ से भारतीय संस्कृति-सभ्यता, राष्ट्रभक्ति से अनुप्राणित शिक्षितजनों का एक समुदाय निर्मित होने लगा। राष्ट्रप्रेम की शिक्षा-दीक्षा देने के कारण ही महात्मा गाँधी ने गुरुकुल काँगड़ी को 'राष्ट्रीय शिक्षा संस्था' कहा था। गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना के उपरान्त महात्मा मुंशीराम ने दिल्ली में '**गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ**' और हरियाणा के कुरुक्षेत्र नगर में '**गुरुकुल कुरुक्षेत्र**', **गुरुकुल सूपा** (गुजरात) जैसे गुरुकुलों की स्थापना की। भारतीय साहित्य, संस्कृति-सभ्यता के प्रचार-प्रसार और स्वतन्त्रता-आन्दोलन में इन गुरुकुलों का योगदान स्वर्ण अक्षरों में उल्लेखनीय है। ये भारतीय संस्कृति-सभ्यता के संरक्षक रहे हैं। गुरुकुलों ने राष्ट्रीय भावना को सुरक्षित रखा है और राष्ट्रप्रेम की भावना में अभिवृद्धि की है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गुरुकुल राष्ट्रीयता के प्रहरी हैं।

गुरुकुलीय शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी के ये सभी कदम क्रान्तिकारी थे और राष्ट्र के उत्थान के लिए वरदान थे। इनकी अनन्य विशेषता यह थी कि ये महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा-पद्धति के अनुसार संचालित थे और इनमें मानवमात्र को समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने के अवसर

उपलब्ध थे। जाति-पाँति, ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं था, सबका समान खान-पान, समान रहन-सहन था। सबको निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा भारतीय संस्कृति-सभ्यता और राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत थी। इन गुरुकुलों की स्थापना के बाद भारत में शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, रूढ़ियाँ छिन्न-भिन्न हो गईं। गुरुकुलों का अनुकरण करते हुए सारे देश में सबको शिक्षा देने की लहर चल पड़ी। भारत के स्वतन्त्र होने के उपरान्त आर्यसमाज की ये शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ अन्ततः भारत सरकार की शिक्षा-नीतियाँ ही बन गईं। आज जो भारत में सर्वत्र और सबको समान शिक्षा के अवसर उपलब्ध हैं, इनकी नींव महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्दजी और आर्यसमाज ने रखी थी। शिक्षाजगत् में विदेशी शिक्षा-पद्धति और शैक्षिक रूढ़िवाद के विरुद्ध क्रान्ति का सूत्रपात करना स्वामी श्रद्धानन्द की राष्ट्रीयता की भावना की संरक्षा और अभिवृद्धि के लिए अभूतपूर्व देन थी, क्योंकि मैकाले द्वारा प्रवर्तित शिक्षा-प्रणाली ने भारत में राष्ट्रवाद की भावना का ह्रास कर दिया था।

स्वतन्त्रता-आन्दोलन के प्रारम्भ होने पर स्वामी श्रद्धानन्द राजनीति के रणक्षेत्र में एक समर्पित और निर्भीक राजनेता के रूप में प्रस्तुत हुए। उन्होंने निडरता की प्रेरणा देनेवाले अपने गुरु महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों से 'निर्भीकता' की दीक्षा प्राप्त की थी। स्वामीजी ने ऐसे-ऐसे उदाहरण अपने आचरण से उपस्थित किये जिन्हें स्वतन्त्रता-आन्दोलन के इतिहास में सदा याद किया जाता है। महात्मा गाँधी ने जब स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह की घोषणा की तो राष्ट्रप्रेम से प्रेरित होकर स्वामीजी भी उसमें कूद पड़े और आन्दोलनकारियों का नेतृत्व किया। उनकी साहसपूर्ण यह घटना प्रसिद्ध है कि एक दिन दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार में स्वामी जी के नेतृत्व में सत्याग्रहियों का जुलूस निकल रहा था। घंटाघर पहुँचे तो देखा कि पुलिस संगीन ताने पंक्तिबद्ध खड़ी थी और आगे जाने के लिए रास्ता रोका हुआ था। स्वामी श्रद्धानन्द आगे थे, जब वे पुलिस की पंक्ति के पास पहुँचे तो एक साथ कई संगीन उनके सीने पर आ टिकीं। स्वामीजी ने अपने सीने के बटन खोलकर पुलिस को ललकारा-**लो, चलाओ गोली**। पुलिस कुछ समय के लिए स्तब्ध रह गई। तभी एक गोरा पुलिस अधिकारी वहाँ दौड़ा आया और उसने संगीनें हटवाकर स्वामीजी के जुलूस के लिए रास्ता खुलवा दिया। सत्याग्रह में स्वामी जी के सम्मिलित होने के बाद सत्याग्रह को नया प्रोत्साहन मिला, श्री गाँधी को एक दृढ़ सम्बल मिल गया। स्वामीजी ऐसे नेता थे जो स्वतन्त्रता-सत्याग्रह करते हुए स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपना बलिदान पहले देने में विश्वास करते थे। महात्मा गाँधी स्वामीजी के इस गुण और आत्मविश्वास से बहुत प्रभावित थे। वे स्वामीजी को राष्ट्रवादी नेता मानते थे। स्वामीजी से प्रेरित होकर उनके अनेक शिष्यों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया और कुछ का तो बलिदान भी हुआ स्वामी जी की दौहित्री सत्यवती का बलिदान भी जेल में दी गई यातनाओं के कारण हुआ था। स्वामीजी से प्रेरित होकर उसने अपना पूरा जीवन स्वतन्त्रता पाने के लिए अर्पित कर दिया था। जेलों की यातनाओं ने उसके युवा शरीर को जर्जर कर दिया था।

सन् १९१९ में काँग्रेस समिति ने निश्चय किया कि इस वर्ष का अधिवेशन अमृतसर में आयोजित किया जाये। जलियाँवाला बाग की बर्बर घटना के बाद अँग्रेज सरकार से पंजाब के नेता और जनता दोनों भयभीत थे। कोई भी काँग्रेस का अधिवेशन कराने की जिम्मेदारी लेने को उद्यत नहीं था, तब पं. मोतीलाल नेहरू के अनुरोध पर स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अधिवेशन कराने का दायित्व स्वीकार किया और अधिवेशन को सफल बनाकर पंजाब की जनता के मन से अंग्रेजी सरकार का भय दूर किया तथा नया उत्साह और आत्मविश्वास उत्पन्न किया। इस प्रकार स्वामीजी स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साहसी और निर्भीक नेता थे।

कुछ घटनाएँ बताती हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द का प्रभाव सामान्य जनता में श्री गाँधी से बढ़कर था। राष्ट्रीय सद्भाव का निर्माण करने का जैसा अभूतपूर्व निश्छल उदाहरण स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती का मिलता है वैसा उदाहरण भारत में अन्य किसी नेता का नहीं मिलता और मिलने की भविष्य में भी संभावना नहीं दिखाई देती। स्वतन्त्रता-

आन्दोलन के दौरान, दिल्ली के गोलीकांड के विरोध में ४ अप्रैल, १९१९ को जामा मस्जिद में नमाज के बाद मुसलमानों की एक विशाल सभा हुई। उसमें माँग उठी कि भाषण के लिए स्वामी श्रद्धानन्द को भी बुलाया जाये। तभी कुछ मुसलमान युवक स्वामीजी को तांगे पर बैठाकर ले आये और उन्होंने जामा मस्जिद की मिम्बर से वेदमन्त्र के उच्चारण के साथ अपना भाषण दिया। इसी प्रकार छह अप्रैल को स्वामी जी ने दिल्ली की फतेहपुरी मस्जिद में भाषण दिया। मस्जिदों में वक्तव्य देने का ऐसा दुर्लभ अवसर प्राप्त करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द एकमात्र हिन्दू आर्यनेता हैं। इस प्रकार स्वामीजी से हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही आजादी के आन्दोलन में प्रेरणा तथा मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी कि २३ दिसम्बर, १९२६ को उनका अब्दुल रशीद नामक एक मुस्लिम मतान्ध व्यक्ति के हाथों बलिदान हो गया और राष्ट्र की स्वतन्त्रता में समर्पित एक महापुरुष हमारे बीच से छीन लिया गया। जिस कट्टरवाद की भावना ने स्वामीजी के प्राण अपहरण किये, स्वामीजी उसको अनुभव कर चुके थे और अपनी भावी योजनाओं से उसे शक्तिहीन करना चाहते थे। भारत की राष्ट्रीय अस्मिता पर मंडराते कट्टरवाद के भावी खतरे को अनुभव करते हुए और हिन्दुत्व को सम्बल प्रदान करने के विचार से स्वामी श्रद्धानन्द ने '**शुद्धि आन्दोलन**' का कार्यक्रम आरम्भ किया था जिससे कट्टरवाद में फँसे लोगों की 'घर-वापसी' हो सके। यह कार्यक्रम पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। पश्चिम उत्तर प्रदेश में लाखों मलकान राजपूतों और अन्य लोगों ने इस्लाम को त्यागकर पुन: हिन्दू-समाज में प्रवेश लिया। यह भारत के प्राचीन राष्ट्रीय स्वरूप को लौटाने का एक दूरदृष्टिपूर्ण साहसी अभियान था। उससे विक्षुब्ध हुए इस्लामी कट्टरवाद ने स्वामी जी की हत्या कर डाली। शुद्धि-अभियान से इस्लामिक कट्टरवाद का रुष्ट और बाधक होना फिर भी स्वाभाविक कहा जा सकता है, किन्तु इसमें श्री गाँधी का बाधक बनना विस्मयजनक और दु:खद रहा। (स्वामी श्रद्धानन्द) ने गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार में प्रथम बार 'महात्मा की माननीय' उपाधि से विभूषित किया था, जो कि श्री गाँधी की जीवनभर की प्रतिष्ठाबोधक बन गई थी, उस दिन श्री गाँधी ने जिस स्वामी श्रद्धानन्द से अपने बड़े भाई के स्थानापन्न रहकर मार्गदर्शन करते रहने की प्रार्थना की थी, उन्हीं श्री गाँधी ने स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे को 'भाई' कहकर सम्मान दिया। उसके द्वारा की गई हत्या को समाज की जिम्मेदारी बताकर हत्यारे का बचाव करने की कोशिश की। आश्चर्य है, राजनीति स्वयं को सन्त कहने वाले व्यक्ति को भी कितना संकीर्ण मानसिकता का बना देता है!! बड़े भाई के स्थान पर प्रतिष्ठित व्यक्ति की हत्या पर भी श्री गाँधी दु:ख न मनाने की बात कहते रहे!! स्वामी श्रद्धानन्द ने 'शुद्धि' के द्वारा भारतीय समाज को अपने भविष्य को सुरक्षित रखने का एक विचार, एक मार्ग प्रदर्शित किया है, उस पर आचरण तो भारतीयों को करना होगा।

राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, सद्भाव, समता और मानवता की दृष्टि से स्वामी जी ने आर्यसमाज के अछूतोद्धार, दलितोत्थान के कार्यक्रम को पूरी निष्ठा के साथ आगे बढ़ाया। जातिगत असमानता, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच का भेदभाव, मानवीय अधिकारों का हनन आदि व्यवहारों ने अतीत में हिन्दू-समाज और हिन्दू-राष्ट्र का विघटन एवं पतन किया है। इस विघटन एवं पतन को रोकने का एकमात्र उपाय है जातिगत भेदभाव को समाप्त करना। स्वामी जी ने इसके लिए संघर्ष किया और कथित अछूतों के साथ सहभोज रखे, उनको सार्वजनिक कुओं से पानी लेने का अवसर प्रदान किया, मन्दिरों में प्रवेश दिलाया, उनको धार्मिक अधिकार प्रदान किये, यज्ञोपवीत देकर शिक्षा ग्रहण करने के अवसर प्रदान किये, गुरुकुलों में बिना किसी जातिगत भेदभाव के रहन-सहन, खान-पान का व्यवहार रखा। भारत को, भारतीय समाज को विघटन से बचाने के लिए यह महत्त्वपूर्ण उपाय है, जो स्वामी जी ने अपनाया। उस महान् संन्यासी के बलिदान-दिवस पर उनका कृतज्ञतापूर्ण स्मरण है!! **डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

राजा और प्रजाजन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारों की पालना करें। **-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ६.२६**

प्रवचनमाला-५७

मृत्यु सूक्त-४३

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

हम ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त की बात कर रहे हैं और इसके सातवें मन्त्र में मृत्यु के प्रसंग में एक महिला का रूप क्या होना चाहिए, यह इसमें समझाया गया है। इस मन्त्र में महिला को समानता से, श्रेष्ठता से युक्त हम देखते हैं। हमारे मन में धारणायें हैं कि वेद महिलाओं के बारे में उचित विचार नहीं रखता है। बाद के लोगों ने वेद को लेकर कुछ भी कहा हो लेकिन वेद स्वयं ऐसा नहीं कहता। वेद में तो स्त्री-श्रेष्ठता की ही बात कही गयी है, अच्छाई की ही बात कही है। हमने जितने भी मन्त्र अभी तक देखे, जहाँ भी वेद में महिलाओं का प्रसंग आया, वहाँ सभी जगह पर इस मन्त्र की ही बात दिखाई देती है। विवाह संस्कारों का मुख्य भाग, जिसे हम 'पाणिग्रहण' कहते हैं, उस पर भी यदि विचार करें तो उसमें भी प्रतिज्ञायें एकपक्षीय नहीं हैं, दोनों की हैं। भाव दोनों का है, दोनों के लिये है और उसका महत्त्व भी आप इसी से समझ सकते हैं। **पाणि** संस्कृत में कहते हैं हाथ को और **ग्रहण** कहते हैं पकड़ने को अर्थात् **वर-वधू एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर एक बात कह रहे हैं और वह बात इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसके कारण पूरे संस्कार का नाम ही पाणिग्रहण हो गया है।** वहाँ मन्त्र के जो दो-तीन शब्द हैं, वह ध्यान देने योग्य है-**ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः**। मन्त्र में वर-वधू दोनों कह रहे हैं। शब्दावली देखने से ऐसा लगता है जैसे वर की ओर से बोला जा रहा है, लेकिन यह प्रतिज्ञा है और हाथ पकड़के की जा रही है तो यह नहीं हो सकता कि मैं तुम्हारा सम्मान करूँ और तुम मेरा असम्मान करो। ऐसे तो सम्मान ही नहीं बनेगा। सम्मान बनता ही तब है जब दोनों एक-दूसरे का सम्मान करें। यह मान लिया गया है कि पुरुष सम्माननीय है, यह मध्यकाल की परम्परा है, रूढ़ि है। जैसे आदेश देना केवल पुरुष का काम है, महिला का काम आदेश स्वीकार करना है। लेकिन विवाह के मन्त्र तो यह नहीं कहते। वहाँ तो यह कहा गया है- **गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं**-मैंने अपने भले के लिये, अपने कल्याण के लिये, अपने मंगल के लिये, तुम्हें स्वीकार किया है, तुम्हारा हाथ पकड़ा है। इसमें मेरा भला है, इसलिए पकड़ा है। मेरा तो जिसमें भला हो और तुम्हारा भला न हो तो तुम मेरे साथ आओगे क्यों? इसलिए मेरे से तुम्हारा भला है और तुमसे मेरा भला है।

आगे के मन्त्र देखेंगे तो उनमें लिखा है-तुम यह मत समझना कि मैं तुम्हारे लिये कोई सामान्य व्यक्ति हूँ, नहीं, मैं विशिष्ट हूँ। **भगो अर्यमा**, कहता है कि तुमको साक्षात् सविता ने स्वीकार किया है, अर्थात् जो दिव्य शक्तियाँ हैं, दिव्य सामर्थ्य है, मैं उनके साथ तुमको स्वीकार कर रहा हूँ, उन ऐश्वर्यों के साथ, उन दिव्यताओं के साथ, उन श्रेष्ठताओं के साथ तुम भी मेरे लिये उतनी ही अच्छी हो, उतनी ही श्रेष्ठ हो। श्रेष्ठ का श्रेष्ठ के साथ ही संसर्ग होता है, संवाद होता है, मैत्री होती है इसलिए दोनों एक-दूसरे का सम्मान करें, एक-दूसरे की प्रसन्नता के लिए काम करें, एक-दूसरे की अनुकूलता के लिए काम करें।

वहाँ छः मन्त्रों के अन्दर दो बड़े रोचक सन्दर्भ हैं, जिनसे यह पता लग जाता है कि हमारे समाज में, वैदिक मान्यताओं में हम स्त्री के लिए क्या स्थान रखते हैं। वहाँ

पर कहा गया है कि हम कभी परेशानी में, विरोध में, विवाद में, अपराध में न जायें। ऐसा हो तो सकता है लेकिन उसके लिए उपाय करना पड़ेगा। कहता है कि **न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्**- पाश कहते हैं जाल या दण्ड को। दण्ड कब होता है? अपराध में। तो वरुण के जो पाश हैं, कहीं पैर में होते हैं अर्थात् हमारी भूलें जो मस्तिष्क से सम्बन्ध रखती हैं, जो मध्य से सम्बन्ध रखती हैं, जो गति से सम्बन्ध रखती हैं। मन्त्र कहता है कि वे भूलें न हों और ये पाश हमको बाँधे नहीं। यह जो बुराई है, पाप है, यह हमको बन्धन में डालता है। हमने किसी का कुछ उधार लिया है, चुराया है, तो उसे देखते ही हमारे मन में हमें उससे बचने की इच्छा होती है। कोई भी भूल हमको स्वयं बाँध देती है।

इसके लिये ऋषि दयानन्द ने तीन स्थानों पर एक ही पुस्तक में, तीन शब्दों का प्रयोग किया है। तीन अच्छाई के लिये, तीन बुराई के लिये। वह लिखते हैं कि जब मनुष्य का मन अच्छा होता है तो उसके अन्दर आनन्द, उत्साह और निर्भयता होती है। किसी काम को करके आनन्द आता है, दोबारा करने की इच्छा होती है, उत्साह बनता है और करते हुए किसी तरह का संकोच नहीं होता, निर्भयता होती है। यह श्रेष्ठता की, अच्छाई की, भले की पहचान है। जब मनुष्य बुरा करता है, तब भय, शंका, लज्जा होती है। ऐसा लगता है कोई देख तो नहीं लेगा, किसी को पता तो नहीं चल जायेगा, कोई अनर्थ तो नहीं हो जायेगा, इसका कोई दुष्परिणाम तो नहीं मिलेगा। मन में सदा रहता है कि कोई आ तो नहीं गया और यदि किसी ने सचमुच में जान लिया, देख लिया तो हमारे अन्दर लज्जा का भाव पैदा होता है। हम अपने को अपमानित अनुभव करते हैं, निम्न अनुभव करते हैं, आँख मिलाकर, गर्दन उठाकर बात करने का भाव समाप्त हो जाता है। ये जो परिस्थितियाँ हैं मनुष्य के जीवन में न आयें। आनन्द, उत्साह, व निर्भयता की परिस्थिति उसके जीवन में बनी रहे। भय, शंका, लज्जा की परिस्थिति किसी भी तरह से न आए, हट जाए। क्या एक परिवार ऐसा कर सकता है, रह सकता है ऐसी परिस्थिति में? तो वेद कहता है- **न स्तेयम् अद्‌मि मनसोदमुच्ये**-अर्थात् यह बात मन से स्वीकार करनी होगी। यदि आप मन से किसी अच्छाई को स्वीकार कर लेंगे, आपका संकल्प वैसा करने का हो जाएगा तो फिर आपको कोई रोक नहीं सकता है। कहा है '**मनसोदमुच्ये**', क्या कहूँगा मैं मन से, **न स्तेयम्**। संस्कृत में स्तेय का अर्थ होता है, छिपाना, चोरी करना, किसी दूसरे की चीज को बिना बताए लेना। मन्त्र कहता है कि मैं अपने परिवार में, अपने परिजनों में, अपने घर में, अपने साथी से कुछ भी स्तेय न करना पड़े, चोरी न करनी पड़े, छिपाना न पड़े। यदि मैं यह काम कर लूँ, **न स्तेयम् अद्मि**, कोई भी चीज मुझे छिपाकर न करनी पड़े तो फिर मेरे लिए कोई कठिनाई नहीं है, कोई परेशानी नहीं है, कोई संकट नहीं है।'' यदि हमारे जीवन में एक-दूसरे से कुछ छिपाने का न रहे। भय, शंका, लज्जा का भाव हमारे मन में न आये, कोई ऐसा काम हमारे द्वारा न हो तो स्वयं **श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्**- भगवान् के जो बन्धन हैं, पाश हैं, पाप कर्म का जो दण्ड है, दूसरे के साथ अनुचित व्यवहार करने का जो परिणाम है, आप उससे बच सकते हैं। इस परिस्थिति में वर-वधू दोनों को शास्त्र एक बात कहता है कि दोनों एक-दूसरे के प्रति गौरव का भाव रखें, एक-दूसरे को पाकर गर्व की अनुभूति करें, एक-दूसरे के सहयोगी बनकर प्रसन्न हों और जीवन में कुछ भी ऐसा न हो जिसके कारण भय, शंका, लज्जा की कोई परिस्थिति पैदा हो।

जब हम दूसरे का सम्मान सुरक्षित करते हैं, तो जो व्यक्ति अपने साथियों के सम्मान की रक्षा करता है, ऐसे साथी, सेवक अपने स्वामी के लिए अपने प्राणों का भी उत्सर्ग करते हैं। सम्मान वह चीज है, जो यदि आप किसी को दे सकते हैं, तो आप उसका सर्वस्व ले सकते हैं, आप उसका समर्पण करा सकते हैं। सम्मान में जो उपलब्धि है वह सम्पूर्ण की है। हमें लगता है कि हम किसी का सम्मान क्यों करें? उसको हमारा सम्मान करना चाहिए। लेकिन सम्मान मेरे अधिकार की चीज़ तो है नहीं, वह तो मेरी योग्यता की वस्तु है। कोई व्यक्ति मेरा सम्मान करता है, तो उसको अपना अधिकार समझना या अपनी पात्रता समझना अनुचित है। यदि आपकी पात्रता होती तो सम्मान अन्दर से पैदा होता। सम्मान आपके आधीन होना चाहिए था, लेकिन मनुष्य के जीवन में सबसे विचित्र परिस्थिति

यह है कि हर मनुष्य सम्मान तो चाहता है, हर प्राणी प्यार तो चाहता है, स्नेह सौहार्द्र तो चाहता है लेकिन वह अपने को उसका पात्र समझता है, अधिकारी समझता है जबकि यह बात गलत है, क्योंकि सम्मान को देने की योग्यता, क्षमता, अधिकार, वह दूसरे के पास है। मैं यदि बहुत सारी फूलमालायें स्वयं पहनकर बाजार में निकलूँ तो क्या मैं सम्मानित हो जाऊँगा? लेकिन चार आदमियों के बीच में कोई व्यक्ति मुझे आदर से बुलाता है, सम्मान से कोई चीज भेंट करता है, तब मैं आदरणीय बनता हूँ, लोगों की दृष्टि में सम्माननीय लगता हूँ। इसलिये सम्मान की परिस्थिति दूसरे के बिना पैदा ही नहीं होती, दूसरे की इच्छा के बिना सम्भव ही नहीं होती। यह सम्मान इतनी आवश्यक वस्तु है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर इसकी इच्छा है, चाह है और यह सदा दूसरों से प्राप्त होती है। दूसरा कोई भी अपनी वस्तु कब देगा? जब वह आपसे प्रसन्न होगा, जब वह आपको अपना हितैषी मानेगा। ऐसी स्थिति में चाहने मात्र से बात नहीं बनती। आपको कुछ बनना पड़ेगा। इसके लिए उसके अनुकूल बनना पड़ेगा और उसको प्रसन्न करना पड़ेगा।

जब किसी से कोई चीज आप पाना चाहते हो तो उसे पाने के लिए जिसकी वह वस्तु है, उसे वस्तु का मूल्य तो देना पड़ेगा। दुकानदार आपसे पैसे लेकर वस्तु देता है, मित्र या सम्बन्धी आपसे प्रसन्न होकर आपको वस्तु देता है। वस्तु लेने के लिए आपको मूल्य तो देना पड़ेगा, चाहे भावनाओं के रूप में दो, चाहे पैसे के रूप में दो। पैसे के रूप में दोगे तो व्यापार होगा और भावनाओं के रूप में दोगे तो आपको सम्मान मिलेगा, आदर मिलेगा। कोई प्रसन्न होगा तो आपको भी प्रसन्न करेगा। किसी को आदर देंगे तो कोई आपको आदर देगा। इस आदर को पाने का सबसे अच्छा सा उपाय यह है कि बदले में आदर दें। आप अपने साथी का सम्मान करेंगे तो साथी आपका सम्मान करेगा। इस तरह हमारा समाज स्त्री और पुरुष के रूप में समानता के अधिकार को बताता है, ऊँचे और नीचे की बात नहीं करता है।

[illegible]

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

कुछ तड़प–कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

लिखने वाले ऐसी मनमानी न करें– जीव अल्पज्ञ है। अल्पज्ञता से किसी से भी भूल-चूक सम्भव है। एक लेखक द्वारा लिखी गई भ्रामक दो-चार पंक्तियाँ अनेक पाठकों को भ्रमित करने का कारण बनती हैं। हम जब बोलते हैं तो सुनने वाले सीमित होते हैं। इस कारण बोलते समय की गई चूक से हानि भी सीमित होती है। जितने सावधान व जागरुक होकर हम लिखेंगे उतना ही लोकहित अधिक होगा। मेरी किसी भी पुस्तक में अथवा लेख में मुद्रण दोष से, प्रूफ़ पढ़ने की असावधानी से अथवा किसी भी कारण से चूक का मुझे पता लगे तो मैं खेद प्रकट करता हूँ, क्षमा माँगने से भी संकोच नहीं होता।

इन्हीं दिनों पूज्य पं. आत्माराम जी की जीवनी लिखते हुये माहेश्वरी सभा की स्मारिका जो मुझ तक पहुँचाई गई उसमें कई अशुद्धियाँ तो मैंने लिखते समय पकड़ी लीं, परन्तु उनके परिवार के कुछ नाम छूट गये और कुछ अशुद्ध भी छप गये। परिवार- वालों ने जीवनी पर किये गये परिश्रम, खोजपूर्ण प्रामाणिक लेखन के लिये प्रशंसा भी की, धन्यवाद भी दिया, परन्तु नामों में जो गड़बड़ सी हो गई उस ओर ध्यान दिलाया तो मुझे धक्का लगा। इसके सुधार के लिये पृथक् पृष्ठ छपवा कर चिपका दिया जावेगा। समझ नहीं आती इस दोष के लिये अपनी मनोवेदना व खेद किन शब्दों में व्यक्त करूँ?

मैं तो परिवार के एक-एक सदस्य का नाम किसी जीवनी में दिया ही नहीं करता, परन्तु इधर-उधर से फोटो व नामों का दबाव जो पड़ा उसमें मैं ऐसे विवश हो गया। चलो! एक सीख अच्छी मिली।

माननीय ठाकुर विक्रमसिंह जी का आर्य गौरव– श्रीमान् विक्रमसिंह जी ने बहुत धन लगाकर 'आर्य गौरव' पुस्तक छपवाई। डॉ. धर्मेन्द्र जी को सम्पादक बनाया गया। वह बहुत योग्य हैं। यह सब मानते हैं, परन्तु जिस विषय व विद्या का ज्ञान व अनुभव न हो उस पर लेखनी उठाना लाभ के स्थान पर हानि अधिक करता है। एक अनुभवी साहित्यिक सज्जन ने उसे देखते ही कई न्यूनताओं पर प्रश्न उठा दिये। मुझे भी देखकर बड़ा दु:ख हुआ कि डॉ. धर्मेन्द्र जी ने इस कार्य को हाथ में लेकर कितनी बड़ी भूल कर दी। **किस क्रम से उसमें यह सामग्री दी गई? न कालक्रम और न किसी प्रकार का वर्गीकरण ही पता चला।**

अधिक क्या लिखूँ? जिन पर कुछ लिखा गया है उनके बारे सम्पादक जी ने क्या खोज, जाँच-पड़ताल की? देश-विदेश में कई ग्रन्थों में अन-आर्यसमाजियों ने भी कई ग्रन्थों में यथा (Admirable Achievers of Twentieth Century) मेरा जीवन-परिचय दिया है। ऐसे करने वाले प्रकाशन से पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति के पास सामग्री भेजते हैं। आर्य गौरव में छपा है कि मैंने हिसार दयानन्द कॉलेज से एम.ए. किया है। **यह सर्वथा मिथ्या है।** थोड़ा आंशिक सत्य कहा जा सकता है। **मैंने पंजाब विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग से एम.ए. किया था**। इसके साथ मुझे शताधिक पुस्तकों का लेखक बताया गया है। मेरे द्वारा सवा तीन सौ से ऊपर लिखित व सम्पादित पुस्तकें छप चुकी हैं।

एक आर्यबन्धु ने मेरे सम्बन्ध में लिखे गये वाक्य मुझे पढ़कर सुनाये तो मैं समझ गया कि 'मुँहज़बानी' लिखने वाले इतिहासप्रेमी के पोथे को पढ़कर प्रिय धर्मेन्द्र भ्रमित हो गया। वह वैदिक साहित्य पर ही श्रम करे तो उसकी विद्वत्ता का समाज को लाभ मिलेगा और धर्मेन्द्र जी को बहुत यश प्राप्त होगा।

कौनसे आसमान तक?– आज दूरदर्शन में परमोत्साही गृहमन्त्री माननीय अमित शाहजी की वाणी से यह सुना कि **राम मन्दिर आसमान तक ऊँचा बनेगा** यह सुनकर मैं चौंक गया। मैं तो उर्दू, फारसी तथा इस्लामी साहित्य का रसिक रहा एक आर्यसमाजी हूँ। 'आसमान' शब्द भारत में इस्लाम के प्रभाव से आया है। आसमान इस्लाम के अनुसार सात हैं। सातवें पर अल्लाह मियाँ का तख्त है। वहीं पर पैगम्बर मुहम्मद का निवास है। चौथे आसमान पर भी एक पैगम्बर का निवास है।

भारत में ऋषि-मुनि किसी आसमान की सत्ता मानते ही नहीं। मैक्समूलर भी नीले आसमान का उल्लेख करता है। ऋषि- मुनि तथा वैज्ञानिक मेघों के कारण आकाश को नीला-नीला देखते हैं अन्यथा 'नीला आसमान' जैसा कोई लोक नहीं। आसमान तक मन्दिर बन भी गया तो वहाँ जावेगा कौन?

श्रीराम, लक्ष्मणजी तथा माता सीताजी वनों में यज्ञ करते थे। दोनों समय सन्ध्या करते थे। ऐसा वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट वर्णन मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित मानस में भी सन्ध्या आदि नित्यकर्म करने के प्रमाण मिलते हैं। हमने भी कभी एक गीत में श्रद्धा भक्ति से यह पंक्ति लिखी थी-

'राम वनों में यज्ञ रचाते सीता माता सन्ध्या करती'

न जाने राम मन्दिर की दुहाई देनेवालों ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय सुनाने से न कभी पहले तथा न ही निर्णय आने के पश्चात् यज्ञशाला तथा सन्ध्या मन्दिर की कभी बात ही क्यों नहीं की? जब काशी के पण्डितों ने कल्याणी देवी नाम की वेदनिष्ठ आर्यदेवी को काशी विश्वविद्यालय में स्त्री होने के कारण वेद पढ़ाने का कड़ा विरोध किया तो आर्यसमाजी विद्वानों ने धर्मशास्त्रों व इतिहास के प्रमाणों से स्त्रियों के वेद अध्ययन के अधिकार को सिद्ध कर दिया। आज की भारत सरकार डॉ. राधाकृष्णन् जी को पूरा-पूरा सम्मान देती है। तब वही काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। उनके होते जब पण्डितों ने यह शोर मचाया तो डॉ. राधाकृष्णन् जी ने अपनी पुस्तक Religion and Society में **माता सीता जी द्वारा वेद-मन्त्रों से यज्ञ करना सिद्ध किया था**। यह पुस्तक कई भाषाओं में मिलती है। इसमें वेद के एक मन्त्र का अर्थ (ऋषि दयानन्द कृत अर्थ बिना नाम के दिया है) भी स्त्रियों के वेद-अध्ययन के अधिकार के लिये दिया गया है।

हमारी कोई सुनेगा तो नहीं, परन्तु फिर भी अपनी बात कहने से हम टलने वाले नहीं हैं। जैसे कन्याकुमारी स्मारक में योग-केन्द्र बना है ऐसे ही अध्योध्या में सन्ध्या-मन्दिर व भव्य यज्ञशाला होनी ही चाहिये। **घण्टे-घड़ियाल माता सीता व श्रीराम ने कहाँ बजाये?** कोई प्रमाण तो दो?

स्वामी श्रद्धानन्द शौर्य शताब्दी पर्व- स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के शौर्य, कर्मण्यता तथा सर्वस्व का त्याग करने के उनके मनोभाव की उनके घोर विरोधियों ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अपने देश के लिये, दीन, दुःखी, दलित, दरिद्र वर्ग तथा आर्यसमाज के लिये आपने जो दुःख व कष्ट सहन किये उनको शब्दों में बता पाने में लेखनी व वाणी दोनों अक्षम हैं। विश्व में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का सर्वाधिक खोजपूर्ण तथा बड़ा जीवन-चरित्र इसी लेखक को लिखने का सौभाग्य तथा गौरव प्राप्त है। हम उनकी सतत साधना व महानता पर क्या-क्या लिखें तथा क्या-क्या छोड़ें? कुछ चुने हुये प्रेरक प्रसंग देने पर सन्तोष करेंगे।

पिंजरे में बन्दी बनाया गया राष्ट्रीय नेता- देश भर का एक ही राष्ट्रीय नेता है जिसे स्वराज्य संग्राम में बन्दी बनाकर पिंजरे में रखा गया। पिंजरा भी इतना तंग अथवा छोटा कि उसमें स्वामी जी सिर उठा कर सीधे खड़े न हो सकें। टाँगें पसारकर सो न सकें। वहीं पीने के जल का घड़ा और वहीं मल-मूत्र विसर्जन करना पड़ता था। सिख बन्धुओं के गुरु के बाग के मोर्चा में महाराज को पिंजरे में बन्दी बनाकर अमानवीय यातनायें दी गईं।

वैसे जलियाँवालाबाग हत्याकाण्ड के समय काँग्रेस के एक सिरमौर आर्यसमाजी नेता डॉ. सत्यपाल जी तथा उनके वयोवृद्ध पिता को भी केन्द्रीय कारागार लाहौर में अलग-अलग पिंजरों में रखा गया था। पिता-पुत्र एक-दूसरे को देख तक न सकते थे।

दक्षिण भारत में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के एक भक्त क्रान्तिवीर पं. नरेन्द्र जी को भी क्रूर निज़ाम ने शेर, चीतों, बाघ-बघेरों के बीच जंगल में पिंजरे में ही बन्द रखा था।

न्यायालय में भारी भीड़- गुरु के बाग के मोर्चा में जब स्वामी जी कोर्ट में दण्ड सुनाया गया उस समय कोर्टरूम में दर्शकों की भारी भीड़ थी। हिन्दू-सिख तथा आर्यसमाजी भक्तों में महाराज के चरण-स्पर्श करने की अपार भीड़ को नियन्त्रण में रखने की समस्या खड़ी हो गई। पुलिस अधिकारी ने स्वामी जी से विनती की,

"महाराज! आप कोर्टरूम से बाहर सामने के पेड़ के नीचे खड़े हो जावें ताकि सब श्रद्धालु आपके चरण-स्पर्श करके आशीर्वाद ले सकें।" सरकार की दृष्टि में वह अपराधी थे। इस कारण ऐसा सुकठोर दण्ड सुनाया गया, परन्तु जनता की दृष्टि में वह हीरो थे। पूज्य थे।

अकालतख्त से भाषण देने का अपराधी- अकालतख्त अमृतसर से भाषण देने के अपराध में गोराशाही ने उन्हें दण्डित करके पिंजरे में बन्दी बनाया था। अकालतख्त से भाषण देने का गौरव प्राप्त करनेवाले वही एक ऐसे **राष्ट्रीय नेता थे जो सिख न होते हुये वहाँ से जनता को सन्देश दे सके।**

उनके सम्मान में रात्रि देर तक कोर्ट खुला रहा- मुल्तान गुरुकुल पर एक धनीमानी अभिमानी भूपति सेठ ने अभियोग चला दिया। स्वामी जी को witness (साक्षी) के रूप में कोर्ट में बुलाया गया। जज एक युवा मुसलमान था। स्वामीजी की गाड़ी बहुत लेट मुल्तान पहुँची। मुल्तान पहुँचने पर भक्तों ने नगर में शोभायात्रा निकालने का हठ पूरा किया। अन्धेरा और हो गया। उदार न्यायप्रिय न्यायाधीश ने स्वामी जी के कोर्ट पहुँचने तक न्यायालय बन्द न किया। धनीमानी अभिमानी भूपति को स्वामीजी की साक्षी के कारण कोर्ट में पराजित होकर अपमानित होना पड़ा।

स्टेशन पर चीत्कार, भगदड़- लाला लाजपतराय जी के देश से निष्कासन से दो वर्ष पूर्व गोरे सैनिकों ने अम्बाला छावनी स्टेशन पर उत्पात मचाया। बच्चे, बूढ़े, जवान, क्या स्त्रियाँ और क्या पुरुष, गोरों ने निर्दयता से पीट डाले। स्वामीजी (तब महात्मा मुंशीराम) उसी प्लेटफॉर्म पर निर्भय होकर पहुँचे। उनके तप-तेज की जीत हुई। श्री महात्माजी ने अपने सम्पादकीय में गोराशाही के अन्यायी सैनिकों की पोल खोली। यह अपने आप में एक नया इतिहास था।

कितने शहीद हो गये- लाला लाजपतराय जी, महात्मा भक्त फूलसिंह, शूर शिरोमणि श्यामलाल भाई जैसे कई प्राणवीरों ने परमात्मा से स्वामी श्रद्धानन्द जैसी मृत्यु पाने की प्रार्थनायें की थीं। ऐसे सभी महापुरुषों की, धर्मवीरों की, जनसेवकों की उस कृपालु दयालु परमात्मा ने अक्षरशः सुन ली। इन सबको देशहित और लोकहित में बलिवेदी पर प्राण चढ़ाने का गौरव प्राप्त हुआ।

'श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने सीने पे खाई गोलियाँ'

हमारा साहसी प्यारा आर्यवीर गुरप्रीत- आर्यसमाज का इतिहास रक्त-रंजित है। साहसी धर्मवीरों शूरवीरों ने ओ३म् ध्वज के नीचे असहनीय दुःख, कष्ट झेले। वैर-विरोध का सामना करके आर्यसमाज की शान को चार-चाँद लगाये और यश पाया। इस कालखण्ड में सिरसा के एक २०-२१ वर्षीय युवक गुरप्रीत ने आर्यसमाज से अपने प्रेम का बड़ी दृढ़ता से मूल्य चुकाया है। उसको वैदिक धर्म स्वीकार करने पर जिस विरोध का सामना करना पड़ा है वह आज नहीं, कभी फिर हम पाठकों की सेवा में रखेंगे।

अपने एक युवा आर्य अध्यापक की प्रेरणा से गुरप्रीत ने परोपकारी में 'कुछ तड़प कुछ झड़प' स्तम्भ को नियमित पढ़ना आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों तड़प-झड़प पढ़ता गया, अडिग, निर्भीक आर्यसमाजी बनता गया। श्री अभय जैसे कई धर्मानुरागी आर्यवीर उसकी रक्षा और सहयोग को बिन बुलाये आगे आये। वह मुझसे मिलने को उत्सुक रहा, परन्तु मिल न सकता था। वह फिर भी बाधायें चीरकर मुझे मिलता रहा। कैसे? यह एक लम्बी कहानी है। कभी फिर बतायेंगे। वह एक गवेषक लेखक के रूप में यश पा रहा है। आर्यसमाज के गौरव गगन में चमकेगा। यह धर्मयोद्धा 'परोपकारी' की देन है। हम इस रत्न को माँ आर्यसमाज की भेंट करने पर बहुत-बहुत बधाई देते हैं।

'मिला गुरप्रीत हमको, प्रभु यह देन तुम्हारी'

न्यू मुल्ताननगर समाज का समारोह- दिल्ली में एक जानदार समाज है। इस समाज की यज्ञशाला पूज्य पं. लोकनाथ जी के नाम नामी पर है। इस समाज के प्रधान श्री राजकुमार जी अजमेर पहुँचकर श्री डॉ. वेदपाल को २४ नवम्बर को अपने समाज में कई महत्त्वपूर्ण नई पुस्तकों के विमोचन करने के लिये निमन्त्रण दे गये। इस समाज में ७-८ वर्ष के बालक-बालिकाओं से लेकर प्रत्येक आयु वर्ग के सत्संगी आपको मिलेंगे। समाज के प्रधान जी प्रातः से सायंकाल तक आर्यसमाज को तीन-चार घण्टे तो देते ही हैं। प्रातः-सायं वह समाज में आपको कार्यरत मिलेंगे। ऐसे और कितने मन्त्री-प्रधान होंगे?

विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द की आगामी शताब्दी के उपलक्ष्य में 'मैक्समूलर का ऐक्सरे' पुस्तक श्रीकृष्ण महाराज की निन्दा में मैक्समूलर के घृणित आक्षेपों के उत्तर-प्रत्युत्तर में लिखी गई एक ठोस व मौलिक पुस्तक है। यह कुल्लियाते आर्य मुसाफिर के पश्चात् धर्म-रक्षा में लिखी गई आर्यसमाज की अनूठी देन है। इसका पहला भाग इन पंक्तियों के लेखक ने लिखा है, दूसरा भाग स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की एक अद्‌भुत उर्दू पुस्तक का अनुवाद है। वह भी कभी मैक्समूलर के उत्तर में लिखी गई थी।

हिन्दू समाज जय श्रीराम, जय राधे कृष्ण करना ही जानता है। इस वार का प्रतिकार आज तक न किया गया। हमें जब पता चला हमने इसका उपयुक्त उत्तर देने की ठान ली। छपते ही देश-विदेश में इस पुस्तक की धूम मच गई है। आर्यसमाज शान से कह सकता है।

'लाज लुटती बचाई श्रीकृष्ण की'

डॉ. वेदपालजी को इस विषय में खुलकर बोलने का समय न मिला। यह हमें बहुत खला। इतना महत्त्वपूर्ण कार्य अन्त में रखा गया। उधर भोजन का समय था। पहले और कई विषयों पर बुलाये गये वक्ता बोलते रहे। ऐसे कार्यक्रम किसी और दिन रखे जा सकते थे।

'ऋषि दयानन्द का अपूर्व पत्र-व्यवहार' महात्मा मुंशीराम जी का ऋषि के पत्र-व्यवहार पर सबसे पहला ग्रन्थ था। इसका महात्मा मुंशीराम जी लिखित सम्पादकीय आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना ११० वर्ष पूर्व था। हमने लाला गोविन्दराम जी की प्यार भरी प्रबल प्रेरणा से इस पर ६५-६६ वर्ष चिन्तन करके इतिहास-शास्त्र की दृष्टि से इसका सम्पादन करके बहुत विस्तृत प्राक्कथन लिखकर इस पत्र-व्यवहार की महिमा दर्शाई है।

'महात्मा गाँधी और आर्यसमाज' नाम की दो दुर्लभ बेजोड़ उर्दू पुस्तकों का अनुवाद, सम्पादन करके अजयजी को दिया। छपते ही इन दो पुस्तकों ने धूम मचा दी है। पाठक प्रशंसा करते हुये नहीं थकते। एक पुस्तक पहले लाला लाजपतराय जी ने छापी थी और दूसरी प्राणवीर महाशय राजपाल ने। एक के लेखक कहानीकार महाशय सुदर्शन हैं तो दूसरी के शास्त्रार्थ महारथी आर्य पत्रकार महाशय चिरञ्जीलाल जी 'प्रेम' हैं। प्रेम जी कई दैनिक पत्रों के भी सम्पादक रहे।

लौहपुरुष स्वतन्त्रानन्द स्वामी के नये संस्करण का भी विमोचन आर्यवीर अनिल देवनगर ने किया। पं. रुचिराम जी के गुप्तचर के रूप में खिंचे सात चित्र इसमें दिये गये। पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने इस ग्रन्थ को अद्‌भुत बताया था। क्यों? यह पढ़कर देखिये। ६०० पृष्ठों के ग्रन्थ को पूज्य उपाध्याय जी ने अद्‌भुत लिखा था तो उसका एक कारण है। यह आर्यसमाज के जीवनी साहित्य में पं. लेखराम जी रचित ऋषि जीवन के बाद ऐसी पहली जीवनी है जिसके लेखक ने देशभर में भ्रमण करके खोज-खोजकर सामग्री एकत्र की और एक-एक घटना की प्रामाणिकता का स्रोत भी साथ-साथ दिया। एक इतिहासज्ञ के अनुसार इसके लेखक ने जीवन की ओट में आर्यसमाज का एक शताब्दी का इतिहास दे दिया है।

महाकवि दुर्गासहाय सुरूर का ग्रन्थ- आर्यसमाज में पहली बार एक देशभक्त मुसलमान साहित्यकार डॉ. अलिफ़ नाज़िम द्वारा संग्रहीत व सम्पादित सुरूर जी की कविताओं पर आठ सौ पृष्ठों से भी अधिक विशालकाय ग्रन्थ को प्रकाशन पूर्व जनता के सामने लाया गया। उर्दू साहित्य के इतिहास में पहली बार महर्षि दयानन्द, पं. लेखराम के इस शिष्य को महिमा- मण्डित करते हुये ऋषि दयानन्द, पं. लेखराम, महाशय कृष्ण, महरूम जी आदि सबका उल्लेख किया गया है। आर्यसमाज के लिये इतने लम्बे समय के इतिहास में एक मुसलमान भाई द्वारा सम्पादित इतना अनूठा ग्रन्थ श्री जितेन्द्रकुमार जी गुप्त बठिण्डा ने छपवाया है। दो विस्तृत प्राक्कथन लिखकर डॉ. अलिफ़ नाज़िम जी तथा राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने आर्यसमाज तथा आर्यजाति का सिर ऊँचा कर दिया है। एक नया इतिहास रचा गया है। यह सब मान रहे हैं। ग्रन्थ का विमोचन शीघ्र होगा।

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३**

ऐतिहासिक कलम से....

महर्षि दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी मौलिक विचार

(सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास के आधार पर) - २

आचार्य श्री पं प्रियव्रत वेदवाचस्पति

अब आगे के अंकों में परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करायेगी जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनमें यह द्वितीय लेख 'महर्षि दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी' आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्री पं प्रियव्रत वेदवाचस्पति जी द्वारा लिखा गया है। -सम्पादक

महर्षि दयानन्द के शिक्षा-विषयक मौलिक विचार सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में संकलित हैं। समुल्लास के विषय का निर्देश करते हुए स्वामीजी लिखते हैं-'**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः**।' अर्थात् इस समुल्लास में शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का प्रतिपादन होगा। स्वामीजी ने इस विषय में अपनी विचार-सम्बन्धी स्पष्टता का प्रशंसनीय परिचय दिया है। उनके विचार उलझे हुए नहीं हैं, सभी मन्तव्य स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किये गए हैं। प्रत्येक मन्तव्य अपने आप में पूर्ण हैं। स्वामीजी ने इस समुल्लास में शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों पर ही अपना मत प्रकट किया है। पाठ्यक्रम सम्बन्धी विस्तृत सूचनायें उपस्थित करना उन्हें (द्वितीय समुल्लास में) अभीष्ट नहीं।

स्वामीजी के विचार से ज्ञानवान् बनने के लिए निम्नलिखित तीन उत्तम शिक्षक अपेक्षित होते हैं-माता, पिता और आचार्य। शतपथ ब्राह्मण का निम्नलिखित वचन उनके उक्त विचार का आधार है। '**मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद॥**'

अर्थात् वही पुरुष ज्ञानी बनता है जिसे शिक्षक के रूप में प्रशस्त माता, प्रशस्त पिता तथा प्रशस्त आचार्य प्राप्त हों। बालकों की शिक्षा में तीनों में से किस-किसको कितने समय तक अपना कर्त्तव्य निभाना है, इस विषय में स्वामीजी ने स्पष्ट निर्देश दिया है-''जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ठे से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और ९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेज दें।''

स्वामीजी ने बालक की शिक्षा में माता का भाग और दायित्व सबसे अधिक बताया है और यह उचित भी है। क्योंकि माता ही बालक को अपने गर्भ में धारण करती है; अतः गर्भकाल में माता के आचार-विचार का बालक पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अभिमन्यु द्वारा गर्भ निवासकाल में माता के सुने चक्रव्यूह-भेदन का रहस्य सीख जाना महाभारत की प्रसिद्ध कथा है। जन्म प्राप्त करने के बाद भी काफी समय तक बालक माता के सम्पर्क में ही सबसे अधिक रहता है। स्वामी जी ने इस समय की सीमा ५ वर्ष निर्धारित की है। यह काल बालक के जीवनरूपी वृक्ष का अंकुर काल है। इसमें जो गुण उसके अन्दर पड़ जायेंगे वे बहुत गहरे होंगे। इसलिये माता का श्रेष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है। स्वामी जी लिखते हैं, ''**वह कुल धन्य। वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्। जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम (और) उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता; इसलिए (मातृमान्) अर्थात् ''प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्।'' धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक विद्या पूरी न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।**''

अनेक महापुरुषों ने अपनी जीवनियों में माता का ऋण स्वीकार किया है और अपने समस्त गुणों को माता से प्राप्त हुआ बताया है।

स्वामीजी की विशेषता यह है कि इन्होंने गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात्-तीनों समयों में माता-पिता की आचार-विचार सम्बन्धी शुद्धता का विधान किया है। वे लिखते हैं कि-''माता और पिता को अति उचित है कि गर्भधारण के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य दुर्गन्ध, रुक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और शीलता से सभ्यता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करे कि जिससे रजस्-वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों।'' इस प्रकार शुद्ध वीर्य तथा रजस् के संयोग से उत्पन्न सन्तान भी श्रेष्ठ गुणों वाली होगी। माता और पिता का यह शुद्ध आचार-विचार प्रकारान्तर से गर्भस्थ शिशु की शिक्षा ही है। स्वामी जी आगे लिखते हैं-''बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे जब तक सन्तान का जन्म हो।'' ऐसा करने से सन्तान भी बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम आदि गुणों को धारण करेगी। यही उसके शिक्षित होने का दूसरा रूप है जिसका दायित्व शुद्धरूप से माता पर है, क्योंकि सन्तान गर्भस्थ दशा में उसी के रक्त-मांस से पुष्ट होती है।

इसके बाद स्वामीजी ने जन्म प्राप्त सन्तान को शिक्षित करने में माता के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया है। माता के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा दो प्रकार की हो-(1) आचार-सम्बन्धी (2) प्रारम्भिक अध्ययन-सम्बन्धी। आचार-सम्बन्धी शिक्षा में माता सन्तान को उससे बड़ों के प्रति किये जानेवाले व्यवहार का उपदेश दे। बड़े, छोटे, माता-पिता, राजा, विद्वान् आदि से कैसे भाषण करना चाहिये, उनके पास किस प्रकार बैठना चाहिये, उनसे किस भाँति बरतना चाहिए, इत्यादि बातों का निर्देश देना चाहिए।

इससे बालक सर्वत्र प्रतिष्ठा योग्य बनेगा। दूसरे, माता सन्तान को जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय तथा सत्संगप्रेमी बनाये जिससे सन्तान व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों में न फँसे। माता सन्तान को सत्य-भाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन बनने वाले उपदेश दे। तीसरे, गुप्तांगों का स्पर्श आदि कुचेष्टाओं से उसे रोके और उसे सभ्य बनाये। प्रारम्भिक अध्ययन-सम्बन्धी शिक्षा में माता सन्तान को शुद्ध उच्चारण की शिक्षा दे। माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न, दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे।'' शुद्ध उच्चारण का बहुत महत्त्व होता है।

महाभारत का वचन है, ''माता ही सन्तान को शुद्ध उच्चारण की कला सिखा सकती है, क्योंकि शैशव में उसी का सम्पर्क सबसे अधिक होता है। इसके बाद सन्तान को देवनागरी अक्षरों का तथा अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का अभ्यास कराये। अक्षराभ्यास कराने के उपरान्त माता सामाजिक तथा पारिवारिक आचार सिखानेवाले शास्त्रीय वचनों को कण्ठस्थ करावे। इस सबके अतिरिक्त माता सन्तान को भूत, प्रेत, माता, शीतलादेवी, गण्डा, ताबीज आदि अन्धविश्वासपूर्ण, छलभरी तथा धोखाधड़ी की बातों से उसे सचेत करे तथा उस पर उसे विश्वास न करने दे। स्वामीजी ने इन अन्धविश्वास की बातों का विस्तृत तथा रोचक शैली में वर्णन किया है। बाल्यावस्था में अन्धविश्वास-विरोधी संस्कार डाल देने से वे बद्धमूल हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त माता का यह भी कर्तव्य है कि बालक को वीर्यरक्षा का महत्त्व बताये। वीर्यरक्षा का महत्त्व जिन शब्दों में माता बताये उनका भी स्वामी जी ने निर्देश कर दिया है। हम उन्हें अविकल भाव से उद्धृत करना उचित समझते हैं-''देखो, जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम, बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् होकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक, महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुन: इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो

सकेगा। जब तक हम लोग गृह कर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुमको विद्या-ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।''

स्वामीजी ने पिता के दायित्व तथा भाग का स्पष्ट शब्दों में पृथक् उल्लेख नहीं किया परन्तु उनके इस निर्देश से कि ५ से ८ वर्ष की आयु तक सन्तान पिता से शिक्षा प्राप्त करे, पिता का कर्त्तव्य भी स्पष्ट हो जाता है। वस्तुत: अन्धविश्वास-विरोधी संस्कारों का निराकरण तथा ब्रह्मचर्य-महिमा का प्रतिपादन पिता अधिक सुचारु रूप से कर सकता है। अत: स्वामीजी ने अन्त में माता के साथ पिता का भी उल्लेख कर दिया है।

स्वामीजी कहते हैं कि अध्ययन के विषय में लालन का कोई स्थान नहीं, वहाँ ताड़न ही अभीष्ट है। ''उन्हीं की सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं।'' इस प्रकार स्वामी जी Spare the rod and spoil the child के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे । उन्होंने महाभाष्य का प्रमाण भी दिया है-

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

अर्थात् गुरुजन अमृतमय हाथों से ताड़ना करते हैं, विषाक्त हाथों से नहीं। भाव यह है कि गुरु की ताड़ना अमृत का प्रभाव करनेवाली होती है, न कि विष का। लालन, प्रेम आदि से दुर्गुण पैदा होते हैं और ताड़न से शुभ गुणों की प्रतिष्ठा होती है। ताड़ना का वस्तुत: अपना महत्त्व होता है। आजकल हम पब्लिक स्कूलों की पढ़ाई को बहुत अच्छा समझते हैं। वहाँ ताड़न निषिद्ध नहीं है। स्वामी जी के इस विचार को अशुद्ध नहीं कहा जा सकता, परन्तु स्वामी जी यह लिखना न भूले कि ''माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़ना न करे। किन्तु ऊपर से भय प्रदान तथा भीतर से कृपादृष्टि रखें।'' कबीर का निम्नलिखित दोहा इसी तथ्य को स्पष्ट करता है-

गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
अन्दर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट॥

इसके बाद स्वामी जी ने लिखा है कि आचार्य सत्याचरण की शिक्षा शिष्य को दे। सत्याचरण बहुत व्यापक शब्द है। इस शब्द में समस्त नैतिक तथा सामाजिक व्यवहार की मर्यादायें अन्तर्भूत हो जाती हैं। शिष्य को सच्चे अर्थों में सामाजिक व्यवहार की शिक्षा देने का दायित्व आचार्य पर है। आचार्य ही उसे सामाजिक दृष्टि से उपयोगी बना सकता है। इसके अतिरिक्त शिष्य को गम्भीर ज्ञान की प्राप्ति तो आचार्य करायेगा ही। परा विद्या तथा अपरा विद्या में शिष्य को पारंगत करना उसका कर्तव्य है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात की ओर संकेत करते हुए स्वामी जी ने तैत्तिरीय उपनिषद् का निम्नलिखित वचन उद्धृत किया है-

'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।'

अर्थात् शिष्य को उचित है कि वह माता, पिता तथा आचार्य के शुभ कार्यों का अनुकरण करे, अन्यों का नहीं। उक्त तीनों शिक्षक भी उसे यही उपदेश करें। मानव सुलभ त्रुटियाँ सभी में होती हैं। माता, पिता तथा आचार्य भी इसके अपवाद नहीं हो सकते। अत: शिष्य को अपने विकास में उपयोगी सब गुणों को अपने तीनों शिक्षकों से ग्रहण कर लेना चाहिये।

स्वामी जी ने यह भी लिखा है कि सामान्य व्यवहार की छोटी-छोटी बात भी यह शिक्षकत्रय शिष्य को बतायें। इन छोटी-छोटी बातों का सुन्दर संकलन मनु के निम्नलिखित श्लोक में है

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनःपूतं समाचरेत्॥

अन्त में स्वामी जी लिखते हैं कि अपनी संतान को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा-युक्त करना माता-पिता का कर्त्तव्य-कर्म, परमधर्म तथा कीर्ति का काम है।

चाणक्य नीति के निम्नलिखित श्लोक में माता-पिता के उक्त दायित्व का इन शब्दों में वर्णन किया गया है-

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में स्वामी जी ने शिक्षा-सम्बन्धी मौलिक बातों पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। उनकी स्थापनायें शास्त्रानुमोदित होने के साथ-साथ उपयोगितावादी व्यावहारिक कसौटी पर भी खरी उतरती हैं।

आर्य सिद्धान्तों के निष्ठावान् प्रचारक स्मृति शेष स्वामी सूर्यवेश जी को शतशत नमन

कन्हैयालाल आर्य

आदिकाल से ही भारत में जब-जब राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में ह्रास हुआ और सुधार या क्रान्ति की आवश्यकता हुई तब-तब इस धरा ने किसी न किसी महान् आत्मा को जन्म दिया। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि कुछ ऐसे ही महापुरुष हैं। महर्षि दयानन्द का जन्म ऐसे समय में हुआ जब चहुँ ओर अज्ञान व अविद्या का साम्राज्य था, भारतीय समाज तरह-तरह की कुरीतियों एवं मिथ्या अन्धविश्वासों से आबद्ध था तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म एवं समाज की उन्नति की ओर किसी का ध्यान नहीं था। महर्षि दयानन्द जी ने आकर समाज और शिक्षा के क्षेत्र में एक अद्‌भुत क्रान्ति को जन्म दिया। महर्षि ने समाज और देश के सर्वतोमुखी विकास के सतत प्रयत्न किये। भारतीयों को स्व-राज्य, स्व-संस्कृति, स्व-भाषा एवं स्वाधीनता का मूल मन्त्र दिया। समाज में व्याप्त बाल-विवाह, सती-प्रथा, बेमेल-विवाह आदि कुरीतियों का प्रबल विरोध किया। महर्षि दयानन्द जी के महाप्रयाण के पश्चात् जिन लोगों ने उनके द्वारा आरम्भ किये गये कार्यों को बढ़ाने का बीड़ा उठाया, उनमें प्रमुख थे- पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज आदि। इसके पश्चात् स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, पं. चमूपति जी, महात्मा नारायण स्वामी, महात्मा आनन्द स्वामी जी आदि आये। हरियाणा में जिन महान् आत्माओं ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों को घर-घर पहुँचाया उनमें भक्त फूलसिंह तथा स्वामी ओमानन्द जी का नाम भी बड़े ही आदर के साथ लिया जा सकता है। इस कड़ी में स्वामी सूर्यवेश जी (पूर्व नाम जगन्नाथ शास्त्री) जिन्होंने आर्यसमाज खेड़ी- आसरा एवं गुरुकुल-लडरावन (हरियाणा) की स्थापना की, का नाम भी सम्मानीय एवं समर्पित व्यक्तियों में लिया जा सकता है।

स्वामी सूर्यवेश जी का जीवन अमर-ज्योति के समान प्रकाशपुंज रहा है। उनका पावन जीवन-चरित्र अपनी अमर ज्योति से हमारे जीवन को भी सदा जगमगाता रहेगा। ऐसे व्यक्ति समाज, राष्ट्र एवं धर्म के उद्धार के लिए सौभाग्य से ही जन्म लेते हैं। हम हार्दिक निष्ठा एवं श्रद्धासहित इस महान् अमर आत्मा को शत-शत नमन करते हैं।

स्वामी सूर्यवेश जी परिव्राट् आर्यजगत् के कर्मठ एवं प्रतिष्ठित संन्यासी थे। वह न केवल अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे, अपितु स्वयं भी कई संस्थाओं के संस्थापक एवं जन्मदाता थे। स्वामी जी विरले व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन पर निम्नलिखित श्लोक अक्षरशः चरितार्थ होत है-

अयं निजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यह अपना है अथवा पराया, यह गिनती छोटे मन वालों की होती है, उदार-हृदय वाले महापुरुषों के लिए तो सारी धरा ही उनका परिवार होती है। आप ऐसे ही उदारमना व्यक्तित्व थे। आपका पावन एवं उदार हृदय था। आपका जीवन एक ऐसा प्रकाशस्तम्भ था जिससे असंख्यजनों ने प्रेरणा प्राप्त की है। आपने पाखण्ड के अन्धकार में लिप्त हुए अनेक लोगों का मार्गदर्शन किया।

आज इस संसार में त्याग, तपस्या, समर्पण, अध्यात्म के प्रति रुचि एक ओर रह गई है। आज का मानव केवल भौतिक सम्पदाओं की वृद्धि में ही रुचि लेने लगा है। आज के मानव का मुख्य उद्‌देश्य केवल धन कमाना है। चाहे वह सामाजिक कार्यकर्त्ता हो, तथा कथित धार्मिक व्यक्ति हो, नेता हो, अभिनेता हो, सभी का लक्ष्य केवल धन कमाना ही रह गया है। आज का मानव सामाजिक कार्य भी दिखावे व यश प्राप्ति के लिए कर रहा है, परन्तु इस सांसारिक कीचड़ में कुछ कमल भी खिलते हैं जिनका उद्देश्य केवल धन कमाना न होकर, समाज व राष्ट्र की सेवा ही है। ऐसे तपस्वी, साधक अपने-पराये का भेद नहीं करते, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को अपने सम्मुख नहीं रखते,

बल्कि अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को राष्ट्र एवं समाज की प्रगति हेतु व्यतीत करते हैं। परोपकार और समाज-सेवा ही उनका परम लक्ष्य होता है। ऐसे ही स्वनामधन्य स्वामी सूर्यवेश जी महाराज थे। जिन पर उपरोक्त श्लोक उचित चरितार्थ होता है।

जन्म एवं बाल्यकाल- स्वामी सूर्यवेश जी का जन्म १४ दिसम्बर १९०६ ईस्वी को हरियाणा प्रान्त के ग्राम-खेड़ी आसरा जिला रोहतक (हरियाणा) के वत्स गोत्रीय गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता पं. रक्षपाल बहुत सीधे, सरल व सच्चे ब्राह्मण थे। माता प्रेमकौर शान्त एवं शीतल स्वभाव की स्वामिनी थीं। परिवार में प्रथम पुत्र के जन्म से पूरा परिवार आनन्दविभोर हो उठा। माता-पिता ने बड़े चाव से उन्हें जागेराम नाम दे दिया। जागेराम बचपन में प्राय: चुपचाप सोते रहते थे, अत: लोग उपहास में कहा करते थे कि भाई! यह लड़का तो सदैव सोता रहता है, इसका नाम तो सूताराम होना चाहिये और आपने इसका नाम जागेराम रखकर भूल की है, परन्तु वे लोग यह नहीं जानते थे कि यह अबोध शिशु बड़ा होकर न केवल अपने आप जागेगा बल्कि पूरे समाज एवं राष्ट्र को जगाने में अपने जीवन को आहूत कर देगा।

बालक जागेराम का शैशव कभी अपने पैतृकस्थल गाँव खेड़ी आसरा और कभी नाना के गाँव मुनीरका (देहली) में बीतने लगा। पाँच वर्ष की आयु होने पर पिता श्री पं. रक्षपाल जी उन्हें ग्राम खेड़ी-आसरा में एक पाधे के पास पढ़ने के लिए बिठा दिया, परन्तु ज्यों ही उनके नाना पं. छीतरमल को पता लगा तो उन्होंने जागेराम को मुनीरका बुलाकर वहाँ महरौली के राजकीय विद्यालय में प्रवेश दिला दिया। परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण जागेराम पुन: अपने ग्राम खेड़ी आसरा में आ गया और वहाँ छारा के विद्यालय में प्रवेश कराया गया, जहाँ उन्होंने उर्दू की पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण कर ली।

यज्ञोपवीत तथा संस्कृत अध्ययन- लगभग १२ वर्ष की आयु में आपका यज्ञोपवीत संस्कार बुराड़ी निवासी पं. नत्थूराम वैद्य ने (जो संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान् थे) अपने ब्रह्मत्व में विधि-विधान से कराया। इसी समय इन्हें गायत्री मन्त्र और पौराणिक सन्ध्या के मन्त्र भी सिखाये गये। यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् पं. नत्थूराम वैद्य इन्हें अपने साथ कराला ले गये। वहाँ उनका नाम परिवर्तित कर जगन्नाथ लिखवा दिया और आप तब इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये। शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात् आप 'जगन्नाथ शास्त्री' के नाम से विख्यात हो गये। पाठशाला में जगन्नाथ जी को पौराणिक पद्धति से शिक्षा-दीक्षा दी गई। पौराणिक संस्कारों के कारण आप शिवलिंग की पूजा करने लगे और शिवमहिमा स्त्रोत का पाठ भी करने लगे।

आप बहुत मेधावी छात्र थे। प्राज्ञ परीक्षा में लघुकौमुदी का प्रत्येक सूत्र आपके स्मृति पटल पर अंकित हो गया। आप अपने गुरुजी को पुस्तक का एक-एक शब्द मौखिक रूप से सुना दिया करते थे। आपकी स्मरण-शक्ति का यह कमाल था कि आपको बहुत-सी पुस्तकें कण्ठस्थ हो गईं। इसी पाठशाला में साधारणपुर निवासी पं. बारुराम जी से विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्हीं की प्रेरणा से आप शास्त्री की पढ़ाई के लिए सनातन धर्म कॉलेज लाहौर चले गये जहाँ से उन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की।

स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रियता- लाहौर में दो वर्ष के प्रवास में आप आर्यसमाज तथा कांग्रेस के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने लगे। उन दिनों लाहौर नगर राजनैतिक एवं धार्मिक आन्दोलनों का केन्द्र बना हुआ था। वहाँ आपकी भेंट महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरु, स्वामी श्रद्धानन्द, वीर भगतसिंह, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज तथा शहीद लेखराम जी से हुई। धर्म के क्षेत्र में सत्य क्या है? की खोज में आप अनेक मन्दिरों, मस्जिदों, चर्चों, गुरुद्वारों में गये, परन्तु सत्य क्या है, प्रश्न का उत्तर वेद सम्मत मार्ग आर्यसमाज से ही मिला। आप पर आर्यसमाज और कांग्रेस की छाप ऐसी पड़ी कि आप 'पूर्ण स्वराज्य घोषणा' तथा 'साइमन कमीशन बायकॉट' के आन्दोलनों में सक्रिय रूप में सम्मिलित हो गये। लाहौर में रहकर देशभक्ति एवं समाज-सुधार की मस्ती आपके मन-मस्तिष्क पर छा गई और आप कई घण्टों तक एकान्त में बैठकर सोचते रहकर अपने क्रान्तिकारी विचारों को लाल स्याही से लिखते रहते थे। पूर्ण सुधार व्रत, खूनी प्रतिज्ञा, भारत की स्वतन्त्रता तथा आर्य साम्राज्य की स्थापना आदि स्वप्नों की योजनाओं के विषय में पन्ने-दर-पन्ने लिखते रहते थे। पं. शिवलाल जी

के प्रेरणा से आप 'गुरुकुल रामताल' में शिक्षा संचालन के अतिरिक्त आसपास के ग्रामों में देशभक्ति और समाज-सुधार कार्यक्रमों का संचालन भी करने लगे।

राजकीय सेवा में नियुक्ति एवं निवृत्ति- गुरुकुल भटिण्डा, गुरुकुल रामताल और संस्कृत पाठशाला सदपुरा में कई वर्ष अध्यापन के पश्चात् जिला बोर्ड की ओर से १९३४ में संस्कृत शिक्षक के पद पर कार्य करने के लिए आपको रोहतक जिले के ग्राम खड़वाली के विद्यालय में नियुक्ति पत्र प्राप्त हुआ। इसी दौरान आपका विवाह पं. गोर्धन जी की पुत्री महादेवी से हो गया। भारत छोड़ो आन्दोलन के पश्चात् निज़ाम हैदराबाद के सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध के विरोध में निकलने वाले जुलूसों में सरकारी नौकरी की परवाह न करते हुए आपने सक्रिय भाग लिया। आप निर्भीकता से अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहे। कई विद्यालयों में अध्यापन कार्य करके आप अपने पैतृक गाँव खेड़ी आसरा में रहकर १९६० में आप अध्यापन कार्य से निवृत्त हो गये।

आर्यसमाज मन्दिर की स्थापना- अपने पैतृक ग्राम खेड़ी आसरा में एक कच्चे भवन में ग्राम के प्रमुख एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों से सहयोग लेकर आपने 'आर्यसमाज मन्दिर' की स्थापना की और २५ दिसम्बर से २८ दिसम्बर १९४६ को प्रथम वार्षिक उत्सव मनाया जिसमें आर्यजगत् के कई विद्वान् पं. रामचन्द्र देहलवी, श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती, राजा महेन्द्रप्रताप, स्वामी व्रतानन्द जी (चित्तौड़) प्रो. शेरसिंह, आचार्य भगवान्देव जी पधारे। आप स्वयं ही अपने मन्दिर की सफाई आदि कर्म किया करते थे। हरिजन बालकों को तालाब और कुओं पर स्नान कराके, यज्ञोपवीत धारण कराकर सन्ध्या और यज्ञ के कार्यक्रमों में सम्मिलित करते थे। इन समाज-सुधार कार्यक्रमों के कारण आर्यसमाज खेड़ी आसरा का नाम दूर-दूर तक सुनाई देने लगा आपने यहीं पर आर्य वीर दल की स्थापना की और युवकों में देशप्रेम और धर्म के प्रति जुड़ाव प्रारम्भ किया। आर्यसमाज खेड़ी आसरा इन दिनों क्रान्ति का केन्द्र बन गया था। साप्ताहिक सत्संगों में भारी संख्या में लोगों ने सम्मिलित होना प्रारम्भ किया।

चेचक का प्रकोप एवं आपकी दृढ़ता- १९५० के शीतकाल में जब आप आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के आयोजन में जुटे हुए थे, अचानक चेचक नामक रोग ने परिवार के कई बच्चों को अपना ग्रास बना लिया जिनमें आपका आठ वर्षीय पुत्र विद्याव्रत, पाँच वर्ष की पुत्री मूर्ति देवी, अनुज वंशीधर के पुत्र रामदत्त, कर्मवीर और सत्यवीर सम्मिलित थे। आप आर्यसमाज के कार्य में इतने व्यस्त थे कि आप इन बच्चों के इलाज के लिए अपेक्षित ध्यान नहीं दे पाये और इस प्रकार पं. लेखराम जी के चरण चिह्नों पर चलते हुए अपने पुत्रों एवं पुत्री का धर्म हेतु बलिदान कर दिया।

समाज-सेवा- आप सदैव समाज-सेवा के कार्यों में व्यस्त रहते थे, परन्तु अभी बहुत कुछ करना शेष है यह विचार उनको सदैव प्रेरणा देता रहता था। चाहे आपके परिवार सम्बन्धी सभी दायित्व शेष थे, परन्तु आप समाज-सेवा और अधिक तीव्र गति से करने के लिए छटपटाते रहते थे। आप बहुत समय से सबसे कहा करते थे कि मैं तो अध्यापन कर्म से निवृत्त होकर गृहकार्यों से निवृत्ति ले लूँगा। इसी विचार को चरितार्थ कर आपने वानप्रस्थ धर्म का पालन करने, घर बार से छुटकारा पाकर घर से दूर रहकर समाज-सेवा करने के लिए विभिन्न संस्थानों यथा वेद-विद्यालय गौतमनगर, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, गुरुकुल सिंहपुरा, गुरुकुल घासीपुरा, डी.ए.वी. स्कूल हसनगढ़ के रूप में सेवा करते रहे। इसी काल में आपने कुछ लम्बी यात्राएँ भी की जिनमें राजस्थान, दक्षिण भारत और कश्मीर यात्रा उल्लेखनीय है।

संन्यास दीक्षा- जगन्नाथ शास्त्री जी (संन्यास दीक्षा से पूर्व नाम) अपने ब्रह्मयज्ञ और वैराग्य भावना के वशीभूत होकर संन्यास ग्रहण करने की उत्कट इच्छा के बारे में अनेक बार सारे परिवार को बता चुके थे और आपने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती महादेवी समेत पूरे परिवार को इसके लिए सहमत भी करा लिया। आर्यजगत् के प्रतिष्ठित संन्यासी स्वामी विद्यानन्द विदेह जी के ब्रह्मत्व में ७ फरवरी १९७१ को आर्यसमाज खेड़ी आसरा (रोहतक) में समारोहपूर्वक आप संन्यास दीक्षा ग्रहण करके जगन्नाथ शास्त्री से 'स्वामी सूर्यवेश परिव्राट्' नाम धारण किया। आप कुछ समय तक अपने दीक्षा गुरु स्वामी विद्यानन्द

विदेह के साथ रहकर स्वामी इन्द्रवेश जी के निमन्त्रण पर आर्यसभा केन्द्र झज्जर में निवास किया। कुछ समय स्वामी शक्तिवेश के साथ गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में रहे। तत्पश्चात् आप देशाटन के लिए निकल पड़े। अनेक संस्थाओं को अपना पड़ाव बनाकर धर्मचिन्तन में मग्न रहने लगे।

स्वामी इन्द्रवेश जी के साथ मिलकर कई आन्दोलन कार्यक्रमों में भाग लेकर अनेक जेल यात्रायें की। प्रिय पुत्र धर्मवीर के विवाह के दिन (११ जून १९७३) को आप इसलिए सम्मिलित नहीं हो सके क्योंकि आप हिन्दी सत्याग्रह के कारण रोहतक जेल में बन्द थे।

गुरुकुल लडरावन की स्थापना- अप अनेक संस्थाओं का अवलोकन करते हुए गुरुकुल टटेसर पहुँचे तो वहाँ मास्टर जोगीराम जी से आपकी भेंट हुई और वहाँ पता चला कि लडरावन ग्राम में नहर के किनारे एक बाबाजी का भवन रिक्त पड़ा है। इस स्थान का गुरुकुल या विद्यालय के लिए उपयोग किया जा सकता है। आपने वहाँ अनेक प्रमुख लोगों से बातचीत कर एक गुरुकुल खोलने का सर्वसम्मत निर्णय लिया। अत: जनवरी १९८१ में पाँच निर्धन छात्रों को भर्ती कर गुरुकुल लडरावन की स्थापना की। स्वामी जी के नि:स्वार्थ, निस्पृह स्वभाव से अनेक मित्र, परिचित जन सहयोग के लिए तत्पर हो गये। यह गुरुकुल पूर्ण रूप से नि: शुल्क था। स्वामी जी पढ़ाने से लेकर छोटे ब्रह्मचारियों को नहलाने, अपने हाथों से उनके मैले कपड़ों को धोने तक के सारे कार्य नि:संकोच स्वयं ही करते थे। इस प्रकार जब तक शरीर स्वस्थ रहा आप गुरुकुल के आचार्य, अधिष्ठाता और संरक्षक का कार्य सुचारु रूप से करते रहे।

यज्ञमय जीवन की अन्तिम यात्रा- ३० नवम्बर १९८५ की प्रात: आप अपना नश्वर शरीर त्याग कर अगले पड़ाव की ओर चल पड़े। आपके परिवार ने आपके नश्वर शरीर को गेरुए वस्त्रों में लपेटकर अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदाई दी। उनकी शवयात्रा में ग्राम एवं निकट के अनेक नर-नारी, परिचित, प्रियजनों ने भाग लिया। वैदिक रीति के अनुसार आपका अन्त्येष्टि संस्कार दिल्ली के मुनीरका ग्राम में हुआ। इस प्रकार ३० नवम्बर १९८५ को प्रात: १० बजे आर्यजगत् के इस महान् योद्धा, परोपकारी महापुरुष तथा वेद-विद्या के निष्ठावान् प्रचारक के यज्ञमय जीवन की पूर्णाहुति हो गई। जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दु:ख सबसे परे होकर उन्हें जीवन की वास्तविकता का तत्त्वबोध हो गया था। किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीने वाले ऐसे मृत्युञ्जयी महापुरुष का स्मरण मात्र महान् प्रेरणा का केन्द्र बिन्दु बन जाता है। किसी संस्कृत के कवि ने स्वामी सूर्यवेश जैसे संन्यासी के विषय में यह उक्ति दी है-

परोपकारैकधियः स्वसुखाय गत-स्पृहाः।
जगत् हिताय जायन्ते, मानवाः केऽपि भूतले।।

अर्थात् एकमात्र परोपकार करने की बुद्धि वाले, अपने सुख की कोई भी इच्छा न रखने वाले तथा केवल मात्र जगत् का हित-चिन्तन करने वाले, कुछ विरले ही महामानव इस पृथ्वी पर जन्म लेते हैं और ऐसी ही महान् विभूति थे हमारे स्वामी सूर्यवेश जी परिव्राट् (पूर्व नाम जगन्नाथ शास्त्री) खेड़ी आसरा रोहतक वाले। ऐसे महामानव को शतशत नमन।

(यह लेख स्वामी सूर्यवेश जी क सुपुत्र भूतपूर्व प्राचार्य श्री ओमप्रकाश शर्मा जी की पुस्तक 'जीवन ज्योति' को आधार बनाकर लिखा गया है। श्री ओमप्रकाश शर्मा जी को अपने पिता की सैद्धान्तिक विचारधारा विरासत में मिली थी। यह लेख लोगों को अपना जीवन समाज-सेवा में अर्पित करने हेतु दिया जा रहा है।)

- मन्त्री परोपकारिणी सभा

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में शिथिलता: कारण और निवारण

वेद प्रकाश गुप्ता

हम सभी यह स्वीकार करेगें कि आर्यसमाजियों की दशकों से संख्या निरन्तर कम हो रही है। आर्यसमाज ही ऐसा धर्म, समाज होगा कि जहाँ कुछ आर्यसमाजियों के बच्चे कहते हुए अथवा लिखते हुए मिलते हैं कि वे आर्यसमाजी नही हैं बल्कि उनके पिता जी, दादा जी आदि आर्यसमाजी थे। ये सब बातें हम विभिन्न आर्यसमाज के समारोहों, आर्य पत्रिकाओं, अखबारों, टेलीविजन पर फिल्म के कलाकारों एवं गणमान्य व्यक्तियों द्वारा कहते हुए, लिखते हुए देखते व पढ़ते हैं। आप के आस-पास रिश्तेदारी में ऐसे कई व्यक्ति मिलेंगे। हमें यही सोचना, समझना, कारण एवं निवारण के लिए अध्ययन करना है कि भविष्य में ऐसा न होने पाये।

इसका प्रथम कारण है कि अधिकांश आर्य परिवार अपने बच्चों को आधुनिक शिक्षा प्राप्त कराने के लिए गैर आर्यसमाजी विद्यालयों में भेजते हैं जो ईसाई मिशनरीज या सनातनी मूर्तिपूजकों के होते हैं। अधिकांश आर्यसमाजी अपने इन बच्चों से, आर्यसमाज के नियमों, कर्मकाण्डों आदि के विषय मे संवाद-चर्चा आदि नहीं करते हैं एवं आर्यसमाज के समारोहों, कार्यक्रमों एवं कर्मकाण्डों में बच्चों को लाड-प्यार के कारण सम्मिलित नहीं करते हैं। बच्चों से आर्यसमाज की विशेषताओं आदि के बारे में तर्क, वार्ता और चर्चाएँ भी नहीं की जाती हैं। इन्हें आर्यसमाज की सामान्य पुस्तकें तो छोड़ दीजिए, मुख्य पुस्तक सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के दस नियम भी नहीं पढ़ाते हैं यह सोच कर कि बड़ा हो जाने पर पढ़ा दिया जायेगा या स्वयं पढ़ लेगा और बड़ा हो जाने पर वह हाथ से बाहर हो जाता है। बच्चे आधुनिक शिक्षा के बस्ते एवं पढ़ाई के बोझ तले, खेलकूद, टी. वी. आदि को छोड़कर, स्वयं आर्यसमाज की पुस्तकों को कभी पढ़ ही नहीं सकते क्योंकि उन्हें यह नीरस एवं अनावश्यक लगता है। ऐसे में ये बच्चे इन विद्यालयों के वातावरण में, इन्हीं विचारधारा के हो जाते हैं जो बड़े होकर आर्यसमाजी नहीं रहते हैं और ये गैर आर्यसमाजी हो जाते हैं जिसके फलस्वरुप आर्यसमाज का विघटन होता जाता है।

आर्यसमाजियों एवं प्रतिनिधि सभाओं के प्रबन्धन में हजारों आर्य विद्यालय एवं डी. ए. वी. कॉलेज हैं। हमें गम्भीरता से उन कारणों को सोचना चाहिए कि किन-किन कारणों से इन विद्यालयों और कॉलेजों के प्रबन्धन, सस्थाएँ, प्रधानाचार्य, शिक्षक, कर्मचारी आदि प्राय: आर्यसमाजी नहीं होते हैं। इन विद्यालयों में भी कभी-कभी लड़ाई-झगड़े व बच्चों के साथ दुर्व्यवहार आदि की घटनायें पढ़ने को मिलती हैं। कई दशकों पूर्व से इन विद्यालयों से उत्तीर्ण होकर निकलने वाले विद्यार्थी भी आर्यसमाजी होना तो दूर, वे आर्यसमाज के दस नियमों एवं आर्यसमाज के सिद्धातों से भी अनभिज्ञ होते हैं। अत: ये विद्यालय सार्थक नहीं हो रहे हैं जिन्हे हमें सार्थक बनाना होगा। आर्यों के समस्त विद्यालयों, डी. ए. वी. कॉलेजों के समस्त प्रबन्धकों, शिक्षकों को आर्यसमाज के दस नियमों, सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १ में लिखे ईश्वर के नामों, गुणों एवं समुल्लास ७, ११, १२, १३ एवं १४ में लिखे प्रश्न-उत्तरों आदि से विज्ञ होकर आर्यसमाजी विचारधारा के ही हों। आर्यसमाज के दस नियम व सत्यार्थप्रकाश को पाठ्यक्रम में अतिरिक्त, अनिवार्य विषय के रुप में अवश्य ही पठन-पाठन, तर्कों, परिचर्चाओं आदि के साथ सम्मिलित किया जाना चाहिए। उन्हें सत्य-असत्य, लाभदायक-हानिकारक कार्यों, तथ्यों आदि से तर्क कर, प्रश्न-उत्तर के रुप में शिक्षित कराया जाय जिससे उन्हें आर्य सिद्धातों का पूर्ण आत्मविश्वास के साथ पर्याप्त ज्ञान और आस्था हो, जिससे उन्हें तर्कों आदि के आधार पर कोई अन्य धर्मी परास्त न कर सके, बहका न सके, बल्कि वह स्वयं परास्त हो जाये। मुसलमानों में बच्चों को नमाज एवं कुरान अवश्य ही पढ़वाया जाता है तथा बचपन से ही उनके दिमाग में कूट-कूट कर भर दिया जाता है कि कुरान पुस्तक को अल्लाह द्वारा आसमान से भेजा गया था तथा इसके किसी आयत या लेखनी पर तर्क करना, प्रश्न करना अपराध है। ऐसा ही ईसाइयों एवं अन्य सभी धर्मों-पन्थों में भी है। ईसाइयों एवं हिन्दू मूर्ति-

पूजकों एवं पौराणिकों द्वारा बच्चों को मूर्ति-पूजा आदि कर्मकांडों में सम्मिलित किया जाता है।

आर्यसमाज के निरन्तर विघटन का दूसरा कारण, आर्यसमाजियों के पुत्रों एवं पुत्रियों के विवाह, प्रायः गैर आर्यसमाजी परिवारों में होने के कारण, बहुएँ सनातनी मूर्तिपूजक आदि ही होती हैं। उससे भी आर्यसमाज की विशेषताओं आदि के बारे में वार्ता और चर्चाएँ नहीं की जाती हैं। पुत्रियाँ भी मूर्तिपूजक परिवारों में जाकर मूर्तिपूजक हो जाती हैं। आस-पास चारों ओर, टी.वी. कार्यक्रमों, सभी दैनिक समाचार पत्रों में मूर्त्ति-पूजा का बढ़-चढ़ कर मंडन होता है। अतः अगली पीढ़ी कैसे आर्यसमाजी रहेगी? इन्हीं सब कारणों से भी आर्यसमाजियों की संख्या निरन्तर कम हो रही है। जिन आर्यपरिवारों में ऐसा नहीं होता, वही परिवार आर्यसमाजी बने रहते हैं।

इस विषय में सुझाव है कि जब भी किसी आर्यसमाजी परिवार के पुत्र का विवाह गैर आर्यसमाजी परिवार की पुत्री से निर्धारित हो रहा हो तब भावी वधू को एवं उसके परिवारवालों को वार्ता द्वारा बता दिया जाय कि विवाह के बाद, पुत्री को आर्यसमाजी होना पड़ेगा। आर्यसमाज के दस नियम जो समस्त मानव समाज के हित में हैं- का पालन करना होगा।

अतः आर्यसमाज का और विघटन न हो के लिए यह आवश्यक है कि अपने बच्चों को बचपन से ही आर्यसमाज के कर्मकांडों में सम्मिलित करें, आर्यसमाज के दस नियमों को कंठस्थ करायें तथा इस पर नियमवार समय-समय पर चर्चा करते रहें जिससे ये नियम और इनसे संबन्धित तार्किक तथ्य उनके मानसपटल पर गहराई तक समा सकें। उन्हे सत्यार्थ-प्रकाश विशेषकर समुल्लास १, ३, ७ एवं ११ पढ़वायें। यदि विद्यालयों के सामान्य दिनों में समय में कमी हो तो छुट्टियों मे इसे एवं अन्य पुस्तकें जैसे महर्षि दयानन्द, महात्मा नारायणस्वामी एवं स्वामी श्रद्धानन्द आदि की आत्मकथाएँ अवश्य ही प्रतिदिन १-२ घंटा पढ़ायें। आर्यसमाज के समस्त विद्यालयों डी. ए. वी. विद्यालयों, गुरुकुलों में आर्यसमाज के दस नियम एवं सत्यार्थप्रकाश को उनके पाठ्यक्रमों में अपरिहार्य रुप से सम्मिलित करना चाहिए। आर्यसमाज के सभी भवनों, विद्यालयों के बाहरी व अन्दर के परिसरों, बैठक, कक्षों आदि मुख्य-मुख्य स्थलों पर आर्यसमाज के दस नियम भली प्रकार के पठनीय अक्षरों में लिखे हुए हों जिसे समस्त आगन्तुक विशेषकर अन्य धर्मवाले इन स्थलों पर आयें तो पढ़कर आर्यसमाज के सर्वकालिक, सर्वकल्याणकारक नियमों-सिद्धातों से विदित हो सकें और सत्य-असत्य का मनन कर आर्यसमाज की ओर आकर्षित हो सकें। आर्यसमाज की सभी पुस्तकों जैसे सत्यार्थप्रकाश, वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थों, पुस्तिकाओं, पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ के पीछे तथा अंतिम पृष्ठ पर आर्यसमाज के दस नियमों को अपरिहार्य रुप से छापना चाहिए, जिससे यह आर्यसमाजियों के भी ज्ञान में मनन एवं पालन करने हेतु बारम्बार आते रहें। जहाँ-जहाँ आर्यसमाज के ये नियम विशेषकर चारदीवारों पर लिखे जायें, वहाँ पर एक नोट लिखा जाये कि इन उपरोक्त नियमों में से, आप जिन-जिन नियमों से सहमत हों, उन नियमों का अपने जीवन में पालन करें और अपने जीवन में आयी सुख-शान्ति आदि लाभों का कुछ माह के बाद स्वयं अवलोकन करें, तब चाहे उपरोक्त नियमों में से अन्य नियमों पर पुनर्विचार कर अपनायें क्योंकि सभी नियम आपके जीवन को सच्चाई की ओर ले जाने वाले ही हैं। अन्य स्वजनों, परिचितों, परिवार के अन्य सदस्यों और साथियों को भी इन नियमों को जीवन में अपनाने को प्रेरित करें। यह सर्वमान्य है कि विश्व में वेद ही प्राचीनतम पुस्तक है। वेदों का ज्ञान ईश्वर द्वारा संस्कृत भाषा में दिया गया है जो किसी देश, स्थान, काल एवं किसी स्थानीय बोल-चाल आदि की किसी की भी भाषा नहीं रही है। किसी भी देश, काल के लोगों को वेदों को पढ़ने, सर्वकल्याणकारी भावार्थ समझने, जानने के लिए एक जैसा परिश्रम करना है। वेदों का ज्ञान-विज्ञान आदि समस्त प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी ज्ञान है अतः ऐसे ही वेद-मन्त्रों के भावार्थ लिए जायें तथा अन्यत्र हानिकारक, अवैज्ञानिक भावार्थ न लिए जायें। अनार्य विद्वानों द्वारा वेद-मन्त्रों का भावार्थ बहुत ही त्रुटिपूर्ण अर्थात् अर्थ का अनर्थ लिखा है जो विश्व मानव के हितों में नहीं हो सकता है अतः इन सबों को अमान्य करना चाहिए। महर्षि दयानन्द जी ने जिन-जिन वेदों का भावार्थ लिखा है उसे ही ग्रहण करना

चाहिए क्योंकि यह भावार्थ विज्ञान, प्रत्यक्ष प्रमाण, स्वयं अनुभव आदि समस्त कसौटियों पर सत्य एवं समस्त मानवों, सार्वदेशीय कल्याणकारी हैं। वेदों में इतिहास नहीं ही हो सकता है क्योंकि यह मानव जीवन के प्रारम्भ से ही है और ऐसा ही भावार्थ लेना समस्त मानव के हित में लाभदायक होगा। चाहें तो उपरोक्त नोट के साथ निम्न तथ्य भी, अथवा अलग से लिखा जाये, जैसे; आप विभिन्न सामग्रियों के क्रय करने में अच्छे से अच्छी सामग्री का चयन करते हैं, भोजन में व्यंजनों का चयन करते हैं, वस्त्रों में कपड़े की गुणता, रंग आदि, विवाह में लड़के-लड़की का चयन करते हैं, उसी प्रकार से विभिन्न धर्मों के मुख्य-मुख्य सिद्धातों का तुलनात्मक अध्ययन कर जो धर्म अपने स्वयं एवं परिवार, मुहल्ले, नगर, प्रान्त, देश एवं विश्‍व के लिए सर्वाधिक लाभदायक, सुख, शान्तिदायक हो उसे ही अपनाना चाहिए। इस विषय में यह भी सुझाव है कि आर्यसमाज के दस नियमों के साथ अन्य मुख्य-मुख्य धर्मों के सिद्धान्तों, नियमों की एक तुलनात्मक तालिका बनायी जाये कि किस धर्म के नियम, सिद्धान्त सर्वकल्याणकारक हैं और उनसे कैसे समाज मानवीय, होने के साथ सभी के जीवन को सुखमय, क्लेशरहित, पूरे विश्‍व को एकसूत्र में बाँध रख सकेगा। इनमें से किस-किस में विरोधाभास, इतिहास आदि हैं जो ईश्‍वरकृत धर्मों और पुस्तकों में नहीं हो सकता है। इस तालिका को प्रमुख स्थानों पर अंकित किया जाय। इस तुलनात्मक तालिका को आर्यसमाज की समस्त पुस्तकों, पत्रिकाओं में छापा जाये एवं प्रमुख दैनिक समाचार-पत्रों, अन्य पत्रिकाओं एवं टेलीविजन पर विज्ञापन कराया जाय। कुछ लोग कहते हैं कि सभी धर्मों का सार एक ही है, परन्तु उनके मान्य धर्म पुस्तकों के मुख्य-मुख्य आदेश भिन्न होने से आपस में सर्वसम्मति नहीं बन सकती है और कभी भी सर्वसम्मति नहीं बन सकती है। अत: आर्यसमाज के दसवें नियम में, सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रखने का सिद्धान्त है तथा प्रत्येक हितकारी नियम में सबको स्वतन्त्र रखने का है यही सर्वमान्य होगा।

आर्यसमाज की विभिन्न बैठकों, समारोहों एवं शोभायात्राओं में वेद-मन्त्रों आदि की व्याख्या आदि की चर्चा की जाती है परन्तु आर्यसमाज के दस नियमों पर शायद ही कभी चर्चा होती हो। आर्यसमाजियों के समूहों के लिए यह सर्वदा उचित है पर अन्य धर्मों समूहों आदि के बीच वेद-मन्त्रों आदि के प्रवचन उन्हें नीरस, अनुपयोगी एंव सहमति करने वाले नहीं लगेंगे जबकि आर्यसमाज के दस नियमों पर परिचर्चा आकर्षक, तथ्यपूर्ण, तर्कपूर्ण, सत्य, उचित एवं उनके धर्मों के सिद्धातों से तुलना करने पर उन्हें उनके धर्मों की कमियाँ एवं आर्यसमाज की विशेषताएँ उजागर होंगी। वर्तमान समय में बच्चों को कार्टून बहुत रोचक लगता है अत: उनकी रुचि के अनुसार आर्यसमाज से सम्बन्धित कार्टून, पुस्तकें, चलचित्र आदि बना कर उन्हें दिखाया जा सकता है जिससे वह बचपन से ही आर्यसमाज के नियमों आदि का ज्ञान, तर्कों, परिचर्चाओं आदि से भली-भाँति विज्ञ हों जिससे वह तार्किक पक्के ज्ञान के आर्यसमाजी बनें और अन्य धर्मियों को भी आर्यसमाजी बना सकें। डी. ए. वी. विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में आर्यसमाज के दस नियमों एंव सत्यार्थप्रकाश सम्मिलित होने चाहिएँ तथा इन पर परिचर्चायें, प्रतियोगितायें होनी चाहिएँ एवं चलचित्र बनने चाहिएँ जैसा अन्य सभी धर्मवाले अपने धर्म का टेलीविजन के कार्यक्रमों द्वारा, छोटी-छोटी पुस्तिकाओं, दैनिक समाचार-पत्रों में विभिन्न प्रकार के लेखों, पैम्फलेट आदि द्वारा भी प्रचार-प्रसार करते रहते हैं, वैसा ही आर्यसमाजियों को भी करते रहना चाहिए। वर्तमान में कुछ प्रदेशों में विभिन्न कार्यक्रमों, तर्कों, सोशल मीडिया द्वारा प्रचार-प्रसार से कुछ नवयुवक आर्यसमाज से जुड़ रहे हैं जो कुछ हर्ष की बात है। आर्यसमाज के विघटन के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त जो जो अन्य कारण संज्ञान में आयें तो उन पर भी चिन्तन, मनन कर, उन पर भी तदनुसार कार्यवाही की जाय। **लखनऊ (उ.प्र.)**

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।-**महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४**

शिक्षा में हिन्दी के प्रस्तोता–स्वामी श्रद्धानन्द

स्व. पं. प्रकाशवीर शास्त्री

हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी का रजतजयन्ती समारोह चल रहा था। गाँधी जी भी उसमें भाग लेने पधारे थे। आये थे यह सोचकर कि जो विश्वविद्यालय काशी में है, वहाँ तो हिन्दी और संस्कृत का बोलबाला होगा ही पर जब गाँधी जी ने चारों ओर वहाँ अंग्रेजी का साम्राज्य देखा तो तिलमिला उठे। विश्वविद्यालय के संस्थापक मालवीय जी को देखकर बोले, महामना! ये बच्चे तो गंगा किनारे बैठकर टेम्स का पानी पी रहे हैं। अपने इसी भाषण में गाँधीजी ने कहा– ''लोग मुझे महात्मा कहते हैं, पर मैं महात्मा नहीं हूँ। महात्मा तो आर्यसमाज के नेता स्वामी श्रद्धानन्द हैं, जो गंगा के किनारे हरिद्वार में बैठकर हिन्दी के माध्यम से गुरुकुल में विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे हैं।

स्वाधीन भारत में अभी तक भी अँग्रेजी हवाओं में पले कुछ लोग यह कहते मिलेंगे– ''जब तक विज्ञान–तकनीकी ग्रन्थ हिन्दी में न हों तब तक कैसे हिन्दी में उच्च शिक्षा दी जाय, जबकि स्वामी श्रद्धानन्द स्वाधीनता से भी चालीस साल पहले गुरुकुल काँगड़ी में हिन्दी के माध्यम से विज्ञान जैसे गहन विषयों की शिक्षा दे रहे थे। ग्रन्थ भी हिन्दी में थे और पढ़ाने वाले भी हिन्दी के थे। जहाँ चाह होती है, वहाँ राह निकलती है। एक लम्बे अरसे तक अँग्रेज गुरुकुल काँगड़ी को भी राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग मानते रहे। इसमें कोई सन्देह भी नहीं। गुरुकुल के स्नातकों में स्वाधीनता की अजीब तड़प थी। स्वामी श्रद्धानन्द जैसा राष्ट्रीय नेता जिस गुरुकुल का संस्थापक हो और हिन्दी शिक्षा का माध्यम हो, वहाँ राष्ट्रीयता नहीं पनपेगी तो कहाँ पनपेगी। स्वामीजी से मिलने देश के प्रमुख राष्ट्रीय नेता भी गुरुकुल आते रहते थे। **दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद जब मोहनदास कर्मचन्द गाँधी पहली बार गुरुकुल काँगड़ी के उत्सव में पधारे, तब स्वामी श्रद्धानन्द ने ही उन्हें महात्मा की उपाधि प्रदान की।** तब से ही गाँधीजी महात्मा गाँधी कहलाने लगे।

राष्ट्रीय महासभा काँग्रेस के मंच पर भी प्रारम्भ में तो तीन–चार दशाब्दियों तक अंग्रेजी का ही दबदबा रहा। भाषण–

प्रस्ताव और चर्चाओं में अंग्रेजी छाई रहती थी। पर जब १९१९ में अमृतसर काँग्रेस अधिवेशन हुआ और स्वामी श्रद्धानन्द उसके स्वागताध्यक्ष बनाये गए, तब पहली बार काँग्रेस के मंच पर हिन्दी सुनने को मिली। स्वामीजी ने वेदमन्त्र पढ़कर जब अपना भाषण हिन्दी में दिया, तब वहाँ बैठे किसी नेता ने कहा– ''आज लगता है हम भारतीय काँग्रेस के अधिवेशन में बैठे। हैं। काँग्रेस अधिवेशन से पहले अमृतसर के जलियाँवाला बाग में ऐतिहासिक नरमेध हो चुका था, जिसकी याद भी आज रोंगटे खड़े कर देती है। लोगबाग इतने डरे हुए थे कि कोई हिम्मत करके तैयारियों में आगे लगने को उद्यत नहीं हो रहा था। सबने आखिर एक स्वर में यह तय किया– ''स्वामी श्रद्धानन्द यदि इस अधिवेशन की बागडोर अपने हाथ में ले लें, तब ही बात बन सकती है। अमृतसर काँग्रेस के चार वर्ष बाद स्वामीजी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी निर्वाचित हुए थे।

गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी स्वामीजी का अमर स्मारक है। प्रारम्भ में जब उन्होंने हरिद्वार में गंगा के दूसरे किनारे पर गुरुकुल की नींव डाली तो अधिकांश व्यक्ति स्वामी जी के प्रयास की सफलता में सन्देह कर रहे थे। कुछ तो कहते थे– ''भला कौन अपने बालकों को इन जंगलों में लाकर साधु बनाएगा। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का वेश भी उन दिनों कुछ ऐसा ही था। सबको वहाँ नंगे पैर, नंगे सिर रहना पड़ता था और पीले खद्दर के कपड़े पहनना अनिवार्य था, पर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सबसे पहले अपने ही दो पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र को गुरुकुल में ब्रह्मचारी बनाया। आगे चलकर वह ही पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति, दिल्ली के प्रसिद्ध पत्रकार और राजनीतिक नेता बने। हरिश्चन्द्र जी स्नातक बनने के कुछ दिन बाद विदेशों में स्वाधीनता की अलख जगाने चले गये।

एक ऐसा भी समय रहा जब लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, देवतास्वरूप भाई परमानन्द चौधरी, रामभजदत्त और श्री घनश्यामसिंह गुप्त आदि आर्यसमाज के नेता राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच पर भी वैसे ही सक्रिय थे जैसे आर्यसमाज में। उन दिनों स्वातन्त्र्य-संघर्ष व आर्यसमाज का संगठन द्वितीय रक्षा-पंक्ति का काम कर रहा था। समाज-सुधार के साथ-साथ राजनीतिक चेतना जगाने में आर्यसमाज के इन नेताओं का योगदान आसानी से नहीं भुलाया जा सकेगा। हिन्दी, हरिजन-समस्या का समाधान और खादी तीनों के लिए आर्यसमाज अर्पित-सा हो गया था। मालवीय जी कट्टर सनातनधर्मी थे और स्वामी जी कट्टर आर्यसमाजी, लेकिन राजनीतिक और सामाजिक सुधार में दोनों एक थे। हिन्दू समाज को रूढ़ियों से उबारकर एक सशक्त समाज बनाने की उनकी कल्पना थी। प्रारम्भ में गाँधीजी के साथ कई प्रश्नों पर उन दोनों का मतभेद भी रहा, पर बाद में गाँधीजी को जब उन्होंने सारी स्थिति समझाई और अन्य स्रोतों से भी गाँधीजी ने उसको वास्तविकता की जानकारी ली तो वह स्वामीजी की दूरदर्शिता के कायल हो गये। दिल्ली में जब स्वामीजी का बलिदान हुआ, तब गोहाटी में उसी समय अखिल भारतीय काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन चल रहा था। स्वामी श्रद्धानन्द की मृत्यु का समाचार सुनते ही अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। शोक प्रस्ताव पर बोलते हुए अपने भाषण में गाँधीजी ने कहा था- ''काश! यह शानदार मौत मुझे भी मिली होती।''

समाज-सुधार आन्दोलन को भी इस निर्भीक संन्यासी से नई दिशा मिली। हरिजन-समस्या के समाधान में तो कई स्थानों पर संघर्ष का भी सामना करना पड़ा। गुरुकुल काँगड़ी के छात्रावासों और भोजनालयों में बिना किसी भेदभाव के हर जाति के विद्यार्थी रहते और खाते-पीते थे। स्वामीजी का कहना था कि मनों में छुआछूत की भावना मिटाने में आवासीय शिक्षण संस्थाओं का अच्छा योगदान रह सकता है। चौबीसों घण्टे एकसाथ मिलकर जब वे रहेंगे, खेलेंगे-कूदेंगे और पढ़ेंगे-लिखेंगे तो कहाँ तक छूत-अछूत की दीवार खड़ी रह जाएगी। आजादी के बाद भी यदि इसी रास्ते को पकड़ा गया होता तो मंजिल बहुत पहले तय हो जाती। आवासीय पद्धति पर आश्रित ऐसे गुरुकुल उन्होंने हरियाणा में इन्द्रप्रस्थ और कुरुक्षेत्र, गुजरात में सोनगढ़ और सूपा में भी खोले। देहरादून का कन्या गुरुकुल भी उसी शृंखला की कड़ी है।

सदियों की दासता के बाद रूढ़ियों का शिकार हिन्दू समाज कुछ समय तक तो बिल्कुल ही छुई-मुई बन गया था। किसी हरिजन से सवर्ण हिन्दू का स्पर्श हो गया तो बिरादरी से बाहर। किसी हरिजन के कुएँ से किसी सवर्ण हिन्दू ने पानी पी लिया तो बिरादरी से बाहर। किसी की चारपाई पर भूल से कोई बैठ गया तो बिरादरी से बाहर। बंगाल में तो किसी मुस्लिम नवाब के दरबार में नाक तक भोजन की गन्ध जाने से ही 'घ्राणम् अर्धभोजनम्' सूँघना भी आधा भोजन होता है, की व्यवस्था देकर एक कुलीन और सम्भ्रान्त परिवार को जातिच्युत कर दिया गया। बाद में उसी की शाखा-प्रशाखाएँ जहाँ-तहाँ निकल-निकलकर पूरे बँगाल में फैल गईं। उसकी परिणति किस रूप में १९४७ में हुई, इसकी विस्तार से यहाँ चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दू समाज की इस कमजोरी को भी सहारा दिया। जो व्यक्ति अथवा परिवार हिन्दू समाज की इस संकुचित भावना के शिकार हो गये थे, उनको समाज में फिर से वह ही पुराना सम्मानित स्थान देकर अपने उदार हृदय और दूरदर्शिता का परिचय दिया। कुछ लोग जो हिन्दू समाज की इस कमजोरी का लाभ उठा रहे थे, उन्हें तो इससे ठेस पहुँचनी स्वाभाविक थी। अली-बन्धुओं को आगे करके गाँधी जी से इसकी शिकायत भी की गयी, पर स्वामीजी ने गाँधी जी को स्पष्ट कह दिया-स्वाधीनता के आन्दोलन को मेरे इस व्यवहार से कुछ भी क्षति पहुँचती है तो मुझे आप छोड़ दें, लेकिन जो लोग स्वयं तो तबलीग की बातें करें और हरिजनों को हिन्दू-मुसलमानों में आधा-आधा बाँटने का सुझाव दें और मुझे अपने ही भाइयों को गले लगाने से रोकें, यह श्रद्धानन्द के लिए सम्भव नहीं है। मैं तो राष्ट्र की एकता का ही एक आवश्यक भाग उसे मानता हूँ।

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ६ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	५१०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,००,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -**संपादक**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि ''**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**'' यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ नवम्बर २०१९ तक)

१. श्री किशनसिंह गहलोत, अजमेर २. श्री लक्ष्मण मुनि, अजमेर ३. श्री विनोद गर्ग, सिरसा ४. श्री गोवर्धनलाल झँवर, सिहोर ५. श्री भँवरलाल व्यास, भीलवाड़ा ६. श्री धनपाल गौरीशंकर पाटीदार, छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़ ७. श्री माँगीलाल धनराज, छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़ ८. श्री मुकेश कुमार, नई दिल्ली ९. श्री विशाल तँवर, नई दिल्ली १०. मै. स्वस्तिकॉम चैरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती ११. श्री बी. प्रभाकर, सिकन्दराबाद १२. श्री निपुण शुक्ल, भीलवाड़ा १३. श्री रजनीश महिन्द्रा, नई दिल्ली १४. श्री अनिल कुमार तोमर, नई दिल्ली १५. श्रीमती पारुल तँवर व श्री वैभव चौहान, नई दिल्ली १६. श्रीमती पुष्पा नासा, नई दिल्ली १७. श्री रमेशचन्द आर्य व श्रीमती रेखा आर्य, नई दिल्ली १८. श्री जयभगवान, नई दिल्ली १९. श्री सन्तकुमार तोमर, नई दिल्ली २०. श्रीमती सन्तोष मदान, नई दिल्ली २१. श्री शाश्वत गौरव रस्तोगी, नई दिल्ली २२. श्रीमती पारुल, नई दिल्ली २३. श्री गोपालकृष्ण सेठी, नई दिल्ली २४. श्रीमती निशा देवी व श्री नागेन्द्र सिंह, नई दिल्ली २५. श्रीमती उमा मोंगा, नई दिल्ली २६. श्रीमती पिंकी मोंगा व श्री कमलेश कुमार मोंगा, नई दिल्ली २७. श्री मनीष व श्री आशीष कुमार, नई दिल्ली २८. श्री हर्ष आर्य, दिल्ली २९. श्री ओमप्रकाश आर्य, मथुरा ३०. श्री धर्मेन्द्र आर्य, नई दिल्ली ३१. सुश्री उन्नति वर्मा, सोजत सिटी।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से १५ नवम्बर २०१९ तक)

१. कै. चन्द्रप्रकाश त्यागी एवं श्रीमती कमलेश त्यागी, रुड़की २. श्री हरसहाय सिंह गंगवार (आर्य), बरेली ३. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु, ४. श्री उदयचन्द पटेल, बैंगलोर ५. श्री चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह, नालन्दा ६. श्रीमती शारदा मीणा, दिल्ली ७. श्री अजय, सोनीपत ८. श्रीमती पुष्पा आर्या एवं श्री कृष्णाराम आर्य मकराना ९. श्री बाबूलाल शर्मा, दिल्ली १०. श्रीमती सुमित्रा पारीक, जयपुर ११. श्री जयप्रकाश गोयल, गुरुग्राम १२. कर्नल गोविन्द सिंह, अजमेर १३. श्रीमती आशा रायजादा सक्सेना, अजमेर १४. श्रीमती सुनीता आर्य, दिल्ली १५. श्री दीपक शर्मा, अजमेर १६. श्री गोवर्धन खण्डेलवाल, अजमेर १७. श्री विष्णुप्रिय, अजमेर १८. श्रीमती उमा मोंगा, नई दिल्ली १९. श्री पप्पूराम, पाली २०. श्री मूलचन्द तोषनीवाल, भीलवाड़ा २१. श्री यज्ञदेव श्री जयदेव सोमानी, अजमेर २२. श्री रामप्रसाद, सराधना २३. श्रीमती तरुणा गहलोत, अजमेर २४. श्रीमती अरुणा गौड़, अजमेर २५. श्री हेमसिंह आर्य, बालोतरा २६. श्री जयसिंह, बाड़मेर २७. श्री ओमप्रकाश, अजमेर २८. श्री श्याम गर्ग, अजमेर २९. श्रीमती सुमनसिंह, अजमेर ३०. पं. श्यामलाल नयाशहर ३१. श्री आदर्श आर्य, नई दिल्ली ३२. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(आ. स. नियम)

अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द

डॉ. जगदेव विद्यालङ्कार

स्वामी श्रद्धानन्द का संन्यास से पूर्व नाम महात्मा मुंशीराम था। इनका जन्म पंजाब के जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में संवत् १९१३ विक्रमी, मास फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी तदनुसार २२ फरवरी सन् १८५७ ई. को हुआ था। पाधा जी ने जन्मनाम बृहस्पति रखकर भी प्रसिद्ध नाम मुंशीराम रख दिया। छह-बहन भाइयों में मुंशीराम अपने माता-पिता की अन्तिम सन्तान थे। इनके पिता श्री नानकचन्द अंग्रेज सरकार में पुलिस कोतवाल के पद पर आसीन थे।

मुंशीराम एक होनहार और कुशाग्र बुद्धि बालक थे। पिताजी का अलग-अलग स्थानों पर स्थानान्तरण होते रहने के कारण उनके अध्ययन में बाधा तो आती थी, परन्तु अपनी पढ़ाई में वह पिछड़े नहीं। उर्दू, हिन्दी एवं अंग्रेजी में उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। पिताजी के अपनी नौकरी में अधिक व्यस्त रहने के कारण, माता का संरक्षण निरन्तर साथ न रहने के कारण तथा बाहर की कुसंगति के कारण मुंशीराम युवावस्था में व्यसनों में फँस गए और आधुनिकता के नाम पर नास्तिक भी हो गए। १८७६ में माता जी का देहान्त हो गया और १८७७ में जालन्धर के प्रसिद्ध परिवार के लाला शालिग्राम की सुपुत्री शिवदेवी के साथ विवाह हुआ। शिवदेवी कुलीन, संस्कारवती, धार्मिक एवं पतिभक्त युवती थी। मुंशीराम को सन्मार्ग पर लाने में उस युवती का भी योगदान था।

मुंशीराम के कुमार्गगामी होने के कारण पिताश्री नानकचन्द चिन्तित रहने लगे थे। १८७९ अगस्त में महर्षि दयानन्द का बरेली आगमन हुआ और एक सप्ताह उनके प्रवचनों का कार्यक्रम चला। तब महर्षि के व्याख्यानों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व नानकचन्द पर था। महर्षि का पहला व्याख्यान सुनकर ही उन्हें यह विश्वास हो गया कि यही साधु मेरे पुत्र को सन्मार्ग पर ला सकता है। पिता के कहने से मुंशीराम ने महर्षि के व्याख्यान सुने और बहुत प्रभावित हुए। मुंशीराम व्याख्यान के उपरान्त तीन दिन तक निरन्तर महर्षि से प्रश्न करते रहे, परन्तु थोड़ी देर के वार्तालाप से निरुत्तर हो जाते। अन्त में मुंशीराम ने कहा- ''महाराज आपकी तर्कणा शक्ति बड़ी प्रबल है, आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है।'' महाराज पहले हँसे, फिर गम्भीर स्वर से कहा, ''देखो तुमने प्रश्न किये, मैंने उत्तर दिये-यह युक्ति की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा परमेश्वर में विश्वास करा दूँगा। तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगे।'' महर्षि के व्याख्यान का सर्वाधिक प्रभावशाली वाक्य निम्नलिखित था, जिससे एक ज्योतिपुञ्ज की भाँति मुंशीराम जीवन भर उत्साह, प्रेरणा एवं मार्गदर्शन ग्रहण करते रहे-''लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे! चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।''

महर्षि दयानन्द के व्याख्यानों ने उस मुंशीराम के मन में खलबली मचा दी थी, जिसे अपने नास्तिकपन पर अभिमान था। अब अपने वकालत के कार्य के साथ मुंशीराम स्वाध्याय भी नियमित रूप से करने लगे। सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय से वह १८८४ में आर्यसमाज के सदस्य बन गये। पहले मुख्तारी की परीक्षा उत्तीर्ण करके उन्होंने अपनी जीविकोपार्जन का कार्य आरम्भ कर दिया। तदनन्तर एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण करके १८८८ में जालन्धर में वकालत आरम्भ कर दी। आर्यसमाज के कार्य में उनकी रुचि और लगन बढ़ने लगी। वे चाहते थे कि आर्यसमाज के प्रचार के अनेक प्रकल्प प्रारम्भ होने चाहिएँ और इसी उद्देश्य से सन् १८८९ में वैशाखी के दिन 'सद्धर्म प्रचारक' उर्दू साप्ताहिक पत्र आरम्भ कर दिया।

लाला देवराज आदि आर्यसभासदों से मिलकर आर्यसमाज के प्रचार को गति देने हेतु अनेक छोटी-छोटी योजनाएँ भी बनने लगीं, जिसके अन्तर्गत आटा फण्ड या धर्मघट की एक भोजन योजना आरम्भ की गई और यह नियम बनाया गया कि सभी आर्यों के घर में एक धर्मघट

रखा जाय और प्रतिदिन गृहिणी भोजन बनाने से पहले एक मुट्ठी आटा धर्मघट में डाल दे, इस प्रकार यह कार्य दयानन्द कॉलिज की आय का एक भाग बन गया। इसी प्रकार एक रद्दी-फण्ड शुरु किया गया, जिसके अन्तर्गत यह नियम बनाया कि सभी आर्यों के घर की पत्र-पत्रिकाओं की रद्दी आर्यसमाज का सेवक प्रतिमास लेकर जाये, जिसे बेचकर आर्यसमाज जालन्धर के पुस्तकालय की पुस्तकों और पत्रिकाओं का खर्च चलता था।

जालन्धर में बालिकाओं के पढ़ने की व्यवस्था नहीं थी केवल ईसाइयों ने एक पुत्री पाठशाला चलाई थी। मुंशीराम की बड़ी बेटी वेदकुमारी इसी पाठशाला में जाने लगी। एक दिन वेद कुमारी अपनी पाठशाला की प्रार्थना की पंक्तियाँ गुनगुनाने लगी-''ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया, ईसा-ईसा बोल तेरा क्या लागे मोल'' पुत्री के मुख से यह वाक्य सुनकर मुंशीराम के मन को एक झटका लगा और शीघ्र ही लाला देवराज से मिलकर १८९० में आर्य कन्या-विद्यालय की स्थापना कर दी।

दैवयोग से १८९१ में मुंशीराम की धर्मपत्नी शिवदेवी का अल्पायु में निधन हो गया, उस समय मुंशीराम की आयु केवल ३४ वर्ष थी, वह चाहते तो दूसरा विवाह कर सकते थे, परन्तु उनकी टकटकी तो अब आर्यसमाज के कार्य पर लग चुकी थी। उनकी सन्तान-वेद कुमारी, हेम कुमारी, हरिश्चन्द्र और इन्द्र का पालन-पोषण उनकी बड़े भाई आत्माराम की धर्मपत्नी ने किया।

सन् १८९२ में आर्य सभासदों ने मुंशीराम की कर्मठता, कार्यकुशलता और समर्पण को देखकर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान का उत्तरदायित्व सौंप दिया। अब तो आर्यसमाज को ही उन्होंने अपना घर बना लिया। उनके लेखन और भाषण के कार्य में विशेष वृद्धि हुई। आवश्यकता पड़ने पर वह शास्त्रार्थ भी कर लेते थे। उन्होंने निश्चय किया कि महर्षि दयानन्द की शिक्षा-पद्धति को क्रियान्वित किये बिना वेद-प्रचार और आर्यसमाज का कार्य अधूरा रहेगा, अत: एक गुरुकुल की स्थापना होनी चाहिए। सन् १९०० में गुरुकुल के लिए तीस हजार रुपये एकत्रित करने का संकल्प लेकर घर से निकल पड़े और छ: मास में चालीस हजार रुपये एकत्रित करके लौटे। १९०२ में ''उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां, धिया विप्रो अजायत।'' इस वेदमन्त्र के अनुसार श्री अमनसिंह द्वारा प्रदत्त भूमि में पर्वत श्रेणियों की तलहटी में गंगा की दो धाराओं के मध्य हरद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल की स्थापना कर दी और सर्वप्रथम अपने दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र को प्रविष्ट कर दिया।

तदुपरान्त तो गुरुकुलों की एक शृंखला चल निकली। १९११ में गुरुकुल कुरुक्षेत्र की विधिवत् स्थापना की और १९१६ में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की, यहीं पर क्रान्तिकारियों के लिए भूमिगत असेम्बली का निर्माण कराया तथा आजादी की लड़ाई का नेतृत्व किया। १९१६ में ही महात्मा मुंशीराम के करकमलों से ही गुरुकुल झज्जर, गुरुकुल मटिण्डू आदि का भी शिलान्यास हुआ।

अमीर पिता की सन्तान होने के कारण उनको पैतृक सम्पत्ति भी पर्याप्त मिली थी और अच्छी वकालत चलने के कारण स्वयं अर्जित की हुई सम्पत्ति भी पर्याप्त थी, उस समग्र सम्पत्ति का उन्होंने आर्यसमाज के लिये दान कर दिया। ऐसा सर्वमेध यज्ञ आर्यजगत् के इतिहास में सम्भवत: दूसरा नहीं था। वैराग्य और श्रद्धा के वशीभूत १९१७ में मायापुर वाटिका हरद्वार में संन्यास आश्रम में प्रवेश करके महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन गए। अब गुरुकुल छोड़कर वह दिल्ली में रहने लगे और स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़चढ़ कर भाग लेने लगे। उनका व्यक्तित्व इतना निर्भीक एवं साहसी था कि रॉलेट एक्ट के विरोध में प्रदर्शन करते ३० मार्च १९१९ को चान्दनी चौक दिल्ली में गोरों की संगीनों के सामने सीना तान खड़े होकर सिंहगर्जना की कि हिम्मत है तो चलाओ गोली और गोरों की संगीनें झुक गईं। उनमें देशभक्ति का जुनून था। वे सम्प्रदायवाद की संकीर्णता से ऊपर उठे हुये थे। उनके विलक्षण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अब्दुल्ला चूड़ीवाले ने जामा मस्जिद पर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने ४ अप्रैल को जामा मस्जिद और ६ अप्रैल को फतेहपुरी मस्जिद से ऐतिहासिक भाषण दिया। मस्जिद से भाषण देने का यह श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द के अतिरिक्त किसी भी हिन्दू नेता को नहीं मिला।

जलियाँवाला बाग की नृशंस घटना के बाद किसी भी

नेता में यह साहस नहीं था कि अमृतसर में काँग्रेस का अधिवेशन किया जाए, यह स्वामी श्रद्धानन्द ही थे जिन्होंने आगे बढ़कर अधिवेशन की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर ली और स्वागताध्यक्ष बने। १९२० में बर्मा की यात्रा करके आर्यसमाज का प्रचार किया और उसी वर्ष नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने दलितोद्धार के कार्यक्रम प्रस्तुत किए। १९२१ में अखिल भारतीय दलितोद्धार सभा की स्थापना की। १९२२ में अकालतख्त अमृतसर से भाषण देकर गुरु के नाम के मोर्चे में जेल गए। १९२२ में ही स्वामी श्रद्धानन्द अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित हुए। आगरा में साढ़े चार लाख मलकाना राजपूत मसलमानों का शुद्धि समारोह आयोजित कर उन्हें हिन्दू धर्म में वापिस लाये। १९२३ में दिल्ली में शुद्धि सभा की स्थापना की। महात्मा गाँधी से मतभेद होने के कारण काँग्रेस छोड़कर शुद्धि आन्दोलन को गति प्रदान की। स्वामी जी ने किसी को बलात् शुद्ध नहीं किया, अपितु जो तीव्र इच्छा लेकर शुद्ध होना चाहते थे, स्वामी जी उन्हीं को शुद्ध करते थे।

स्वामीजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका उदार और राष्ट्रवादी महान् व्यक्तित्व था। भारत के सभी वर्गों के लोग उनमें आस्था और श्रद्धा रखते थे। वह अखण्ड भारत के पक्षधर थे। उनके जीवित रहते भारत का विभाजन नहीं हो पाता। यह देश का दुर्भाग्य था कि २३ दिसम्बर १९२६ को अब्दुल रशीद नाम के सिरफिरे धर्मान्ध ने रुग्णावस्था के उपरान्त विश्राम करते हुये स्वामीजी को गोली मारकर शहीद कर दिया। ऐसे विद्वान् वक्ता, लेखक, कर्मठ देशभक्त, मानवता के उपासक, यशस्वी, मनीषी स्वामी श्रद्धानन्द को बारम्बार प्रणाम!

-रोहतक (हरियाणा)

राजनीति के योद्धा स्वामी श्रद्धानन्द

वेदारीलाल आर्य

सन् १९०० से १९१२ तक का काल आर्यसमाज के लिए परीक्षाकाल था। भारत सरकार की शनिदृष्टि आर्यसमाज पर पड़ चुकी थी। सरकार की देखा-देखी कई देशी रियासतें भी आर्यसमाजियों पर जुल्म कर रही थीं। प्रत्येक आर्यसमाजी को राजद्रोही समझा जाता था। जहाँ गवर्नमेण्ट की नौकरी में से कुछ आर्यपुरुषों को निकाला गया, कुछ को नौकरी छोड़ने के लिए मजबूर किया गया, कुछ के लिए नोटिस दिये गये कि वे आर्यसमाजी हैं इनका ध्यान रखना चाहिए। वहाँ जोधपुर में पुलिस ने आर्यसमाज मन्दिर पर से ओ३म् का ध्वज उतार लिया तथा पटियाला रियासत ने अक्टूबर १९०९ में एक साथ ८४ आर्यसभासदों को गिरफ्तार कर उन पर राजद्रोह का अभियोग चला दिया। इन लोगों के पीछे इनके परिवार पर अनेक आपत्तियाँ आयीं, पर वे विचलित न हुए। महात्मा मुंशीराम जी ने इस अवसर पर अपने सत्साहस और धैर्य का अच्छा परिचय दिया। अपने लेखों द्वारा जहाँ उन्होंने आर्यजनता को धैर्यच्युत होने से रोका, वहाँ सरकार को भी बार-बार आह्वान किया कि आर्यसमाज के विरुद्ध अभियोगों की खुली जाँच की जाय।

पटियाला अभियोग में आपने आर्यसमाज की जो सेवा की वह चिरस्मरणीय रहेगी। यद्यपि सरकार ने उन पर से अभियोग उठा लिया, किन्तु केवल इसलिये कि ''हमारे राज्य में ऐसे पुरुष नहीं रहने चाहिए जिनके विरुद्ध जरा भी राजद्रोह का सन्देह किया गया हो'', उन्हें राज्य से निर्वासित कर दिया। उनमें से कई पुरुषों को महात्मा मुंशीराम जी ने अपने गुरुकुल में आश्रय दिया। पीछे से रियासत ने उपरोक्त आदेश भी वापस ले लिया। इस अग्निपरीक्षा में पड़कर आर्यसमाज शुद्ध कंचन बन गया। पटियाला अभियोग के बाद आचार्य रामदेव जी की सहायता से महात्मा मुंशीराम जी ने 'आर्यसमाज एण्ड इट्स डिस्ट्रेक्टर्स' (Aryasamaj and its Distractors) नामक पुस्तक लिखी जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई।

धौलपुर में आर्यसमाज मन्दिर का एक भाग गिराकर राज्य की ओर से आम लोगों के लिये सार्वजनिक शौचालय बनाये जाने लगा। स्थानीय आर्यपुरुषों के अनुरोध को अधिकारियों ने नहीं सुना। तब आर्य संन्यासी श्रद्धानन्द ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। सम्पूर्ण भारत से आर्यपुरुषों के जत्थे धौलपुर प्रस्थान करने लगे। अन्त में धौलपुर

रियासत को झुकना पड़ा।

स्वामी श्रद्धानन्द सन् १९१९ में राजनीतिक क्षेत्र में आये। इससे पूर्व भी वह राजनीतिक विषयों पर लिखते रहे। इनकी राजनीति में छल-कपट नहीं था। अधिकार की जगह कर्त्तव्य-पालन का ध्यान और इन्द्रियों का दमन था। रॉलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके ०७ मार्च १९१९ को देहली के राजनीतिक मंच से सर्वप्रथम व्याख्यान दिया। इसके बाद बम्बई, सूरत, अहमदाबाद में भी आन्दोलन किया। ३० मार्च को देहली में अभूतपूर्व हड़ताल हुई और इसी दिन घंटाघर पर गोरखे सिपाहियों ने स्वामी श्रद्धानन्द की छाती पर किरचें तानकर उनके यश को सम्पूर्ण भारत में गुञ्जा दिया। इसी रामराज्य में देहली ने वह दृश्य भी देखा, जब शाही जामा मिम्बर से खड़े होकर स्वामी श्रद्धानन्द ने **''त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ''** वेदमन्त्र के द्वारा ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया और ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः के साथ भाषण समाप्त किया। ०२ मई १९१९ को सत्याग्रह कमेटी से इन्होंने अपने मतभेद होने के कारण त्यागपत्र दे दिया। असहयोग आन्दोलन में भी आपने सक्रिय सहयोग किया। पंजाब पर मार्शल लॉ के दिनों में जो अत्याचार किया गया था उसके सम्बन्ध में काँग्रेस कमेटी ने जो रिपोर्ट प्रकाशित की उसमें आपका पूरा-पूरा हाथ था। पंजाब पर जब विभिन्न प्रकार की आपत्तियाँ छाईं थीं उस समय में अमृतसर में काँग्रेस का अधिवेशन कराना आपका ही काम था। इसी अधिवेशन में दिए अपने भाषण में आपने अछूतों के उद्धार की माँग की तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए स्वयं सदाचार की मूर्ति बनना तथा अपनी सन्तान को भी सदाचारी बनाना, राष्ट्रीय शिक्षा एवं सर्वप्रकार से विदेशी आचार-व्यवहार से मुक्ति को आवश्यक बताया। आप अछूतों के उद्धार को काँग्रेस वर्किंग कमेटी से पास कराने में बहुत प्रयत्नशील रहे और जब उसने इस पर ध्यान नहीं दिया तब लखनऊ के १९२२ के अधिवेशन में वर्किंग कमेटी की सदस्यता से त्याग-पत्र देकर अछूतोद्धार और जाति के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में लग गए।

गुरु का बाग अमृतसर के आन्दोलन में भाग लेने आप १० सितम्बर १९२२ को अमृतसर पहुँचे। अकालतख्त से भाषण दिया और गिरफ्तार हुए। ०१ वर्ष और ४ माह की सजा हुई। २६ दिसम्बर को आप मियांवाली जेल से छूट गए। जनता द्वारा आपका भव्य स्वागत किया गया।

स्वामीजी के संध्याकाल की अधिकांश घटनायें दलितोद्धार और संगठन के सत्र में पिरोई हुईं हैं। सरकार की अछूतों को अलग करने की कुटिल नीति को वे जान चुके थे। अमृतसर काँग्रेस में देश का ध्यान उन्होंने इस पर खींचा, महात्मा गाँधी और काँग्रेस का ध्यान बार-बार इधर दिलाया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। वे निराश हो गये। मौलाना मोहम्मद अली ने काकीनाड़ा काँग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए अछूतों को लावारिस माल के समान आधा-आधा बाँट लेने की बात कही। स्वामीजी को इससे गहरी चोट लगी और उन्होंने मौलाना के इस बयान का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने काँग्रेस से पृथक् होकर स्वयं इस कार्य को करने का निश्चय किया। उनके संगठन में जात-पाँत के भेद को तोड़कर गुण कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था, दलितोद्धार और बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह था। दलितोद्धार की समस्या का हल करने के लिए ही वे 'साधु मण्डल' तथा 'हिन्दू महासभा' में सम्मिलित हुए, परन्तु जब उन्हें अपना उद्देश्य वहाँ सिद्ध होता न दिखा तो उससे भी वह अलग हो गये।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

२६ व २७ फरवरी २०२०- परोपकारिणी सभा का स्थापना दिवस

०६ अक्टूबर २०२० - डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०